

2026:AHC-LKO:40363-DB

27.02.2026 को सुरक्षित05.06.2026 को घोषित

इलाहाबाद उच्च न्यायालय
लखनऊ
जेल अपील संख्या - 1060 वर्ष 2018

पुत्तन पासी

.... अपीलकर्ता (गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.... उत्तरदाता (गण)

अपीलकर्ता (गण) के अधिवक्ता : जेल अपील, अमरेश कुमार, दिनेश कुमार, लोक पति
यादव, मयंक तिवारी, प्रमोद कुमार पांडे, संजय कुमार
वर्मा, उदय प्रताप सिंह, विनोद कुमार सिंह

उत्तरदाता (गण) के अधिवक्ता : शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या-9**माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान****माननीय न्यायमूर्ति अबधेश कुमार चौधरी**

1. श्री उदय प्रताप सिंह, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा श्री बिपुल कुमार सिंह, राज्य-उत्तरदाता के विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।

2. इस जेल अपील को अपीलकर्ता द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अधीन (एतदपश्चात् "दं०प्र०सं०" के रूप में संदर्भित) अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, बाराबंकी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 66 वर्ष 2015 में, जो मुकदमा अपराध संख्या 238 वर्ष 2014, थाना-टिकैतनगर, जिला-बाराबंकी से उद्भूत है, दिनांक 05.04.2018 को

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

पारित निर्णय एवं दोषसिद्धि आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और 5,000/- रुपये के जुर्माने सहित तीन वर्ष के सश्रम कारावास तथा जुर्माने का भुगतान न करने पर छह माह के अतिरिक्त सश्रम कारावास से दंडित किया गया है और अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया है और 5,000/- रुपये के जुर्माने सहित आजीवन कारावास तथा जुर्माने का भुगतान न करने पर एक वर्ष के अतिरिक्त सश्रम कारावास से दंडित किया गया है।

अभियोजन वाद

3. अभियोजन के वृत्तांत के अनुसार, जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित है, सूचनाकर्ता श्रीमती तकदीरा, राम नरेश रावत की पत्नी, श्रीमती गोमता की सगी बहन है, जिसका विवाह वर्तमान अपीलकर्ता के साथ हुआ था। वर्तमान अपीलकर्ता अपनी पत्नी अर्थात् श्रीमती गोमता को प्रताड़ित करता था और इसलिए, वह अपने वैवाहिक घर से चली गई और इस प्रकार अपने माता-पिता के साथ रह रही थी। वर्तमान अपीलकर्ता को कथित रूप से संदेह था कि सूचनाकर्ता की पुत्री, अर्थात् कंचना ने श्रीमती गोमता को अपीलकर्ता के साथ न रहने और अपने माता-पिता के घर चले जाने के लिए उकसाया था।

4. दिनांक 18.11.2014 की दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि में लगभग 11:00 बजे, वर्तमान अपीलकर्ता घर आया और सूचनाकर्ता की पुत्री, अर्थात् कंचना के साथ तीखी बहस शुरू कर दी, यह कहते हुए कि तुम लोगों ने उसकी पत्नी को उसके साथ न रहने और अपने माता-पिता के साथ रहने के लिए उकसाया था। इस पर, सूचनाकर्ता की पुत्री कंचना ने अपीलकर्ता से कहा कि वह शराबी था और अपनी पत्नी को पीटा करता था, इसलिए वह उसके साथ नहीं रह रही थी। ऐसे उत्तर पर, वर्तमान अपीलकर्ता ने लगभग 19 वर्ष की आयु की कंचना पर चाकू से वार किया; जिसके परिणामस्वरूप, उसने ऐसी चोटों के कारण दम तोड़ दिया।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

घायल कंचना की चीख सुनकर, शिकायतकर्ता घटनास्थल पर पहुँची और अपनी पुत्री को घायल अवस्था में देखकर, वह जोर-जोर से रोने लगी।

5. शिकायतकर्ता की चीख सुनकर, उसके चचेरे जेठ- राम सजीवन, पुत्र चंदा, लुतावन और इंदल (परिवार के सदस्य) घटनास्थल पर पहुँचे। उन्होंने देखा कि अपीलकर्ता शिकायतकर्ता के घर में है, और उन व्यक्तियों को देखकर, अपीलकर्ता भाग गया और वे वर्तमान अपीलकर्ता को पकड़ नहीं सके। इसके पश्चात्, ग्रामवासियों और शिकायतकर्ता के परिवार के सदस्यों ने घायल कंचना को अस्पताल ले जाने के लिए एम्बुलेंस बुलाई, किन्तु अस्पताल पहुँचने पर डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया।

विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियाँ

6. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, शिकायतकर्ता ने अगली सुबह 7:30 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। 19 नवंबर 2014 को अपराह्न 3:00 बजे से 3:50 बजे के मध्य शव-परीक्षण किया गया, जिसमें मृत्यु-पूर्व तीन चोटें दर्ज की गईं, और मृत्यु का कारण उससे उत्पन्न आघात एवं रक्तस्राव होना अभिमत किया गया।

7. अपीलकर्ता को 20 नवंबर 2014 को गिरफ्तार किया गया और उसके प्रकटीकरण के आधार पर उसके घर की छप्पर की छत से रक्तरंजित चाकू बरामद किया गया।

8. तत्पश्चात्, उसके विरुद्ध 9 नवंबर 2015 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302 और 452 के अधीन आरोप विरचित किए गए।

9. उल्लेखनीय रूप से, अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन ने निम्नलिखित साक्षियों का परीक्षण किया:-

अभियोजन साक्षी-1	श्रीमती तकदीरा	सूचनादाता
अभियोजन साक्षी-2	राम सजीवन	साक्षी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

अभियोजन साक्षी-3	डॉ० एस०पी० यादव	मृतका का शव-परीक्षण करने वाले चिकित्सक
अभियोजन साक्षी-4	श्याम सिंह यादव	सेवानिवृत्त हेड कांस्टेबल; उस समय पुलिस थाना टिकैतनगर, जिला बाराबंकी में तैनात
अभियोजन साक्षी-5	अनिल कुमार सिंह	कांस्टेबल मुहर्नगर; पुलिस थाना टिकैतनगर, जिला बाराबंकी में तैनात
अभियोजन साक्षी-6	जगदीश प्रसाद गंगवार	विवेचना अधिकारी; तत्पश्चात पुलिस निरीक्षक, पुलिस थाना टिकैतनगर, जिला बाराबंकी
अभियोजन साक्षी-7	रमेश प्रताप	कांस्टेबल (सीपी 198); पुलिस थाना टिकैतनगर, जिला बाराबंकी में तैनात
अभियोजन साक्षी-8	राम नरेश	हथियार (चाकू) की बरामदगी का साक्षी

10. उपरोक्त मौखिक साक्ष्य के अतिरिक्त, अभियोजन ने अपने मामले की पुष्टि करने के लिए निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पर भी भरोसा किया है:-

(i)	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श-1
(ii)	शव-परीक्षण की आख्या	प्रदर्श-2
(iii)	प्रथम सूचना रिपोर्ट	प्रदर्श-3
(iv)	पंचनामा आख्या	प्रदर्श-5
(v)	नक्शा नज़री	प्रदर्श-12
(vi)	बरामदगी आख्या	प्रदर्श-13
(vii)	बरामदगी आख्या	प्रदर्श-14
(viii)	बरामदगी आख्या	प्रदर्श-15
(ix)	आरोप-पत्र	प्रदर्श-16

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

(x)	नक्शा नज़री	प्रदर्श-17
(xi)	फॉरेंसिक आख्या	प्रदर्श-20

11. विचारण के दौरान, शिकायतकर्ता ने अभियोजन साक्षी-1 के रूप में बयान दिया, और शिकायतकर्ता के बहनोई राम सजीवन का अभियोजन साक्षी-2 के रूप में परीक्षण किया गया। अभियोजन साक्षी-3 (डॉ० एस०पी० यादव) का चिकित्सा विशेषज्ञ के रूप में परीक्षण किया गया, जिन्होंने मृतका का शव-परीक्षण किया था। अभियोजन साक्षी-8 (राम नारायण) का चाकू की बरामदगी के साक्षी के रूप में परीक्षण किया गया। तथापि, प्रथम सूचना रिपोर्ट में साक्षियों के रूप में नामित अन्य व्यक्ति, अर्थात् लुतावन, इंदल और टुरी का परीक्षण नहीं किया गया। साक्ष्य पूर्ण होने पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का बयान दर्ज किया गया और तत्पश्चात्, विचारण न्यायालय ने प्रश्नगत निर्णय दिनांक 5 अप्रैल 2018 द्वारा, अपीलकर्ता को आरोपित अपराधों का दोषी निर्णीत किया एवं आजीवन कारावास से दंडित किया।

पक्षकारों की ओर से तर्क एवं विचार-विमर्श

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने चुनौती के आधार मुख्यतः (i) अभियोजन की कथा में कमियाँ और रिपोर्ट करने में विलंब; (ii) प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में अस्पष्टीकृत विलंब; (iii) स्थापित हेतुक के अभाव में दोषसिद्धि संदेह पर आधारित है; (iv) महत्वपूर्ण साक्षियों का दमन और रोकना; (v) स्वतंत्र साक्षियों का परीक्षण करने में विफलता; (vi) केवल हितबद्ध साक्षियों का परीक्षण किया गया; (vii) चिकित्सीय साक्ष्य और अभियोजन के कथन के बीच विरोधाभास; (viii) चिकित्सीय साक्ष्य प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के असंगत; (ix) संदिग्ध और विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण बरामदगी; (x) विधि के अनुसार बरामदगी सिद्ध नहीं की गई और कथित टॉर्च की बरामदगी न किया जाना, पर मुख्यतः आधारित रखे हैं।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

13. इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता की दोषसिद्धि विधि एवं तथ्यों में पूर्णतः असंधारणीय है और अपीलकर्ता संदेह का लाभ पाने का अधिकारी है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक वैकल्पिक तर्क प्रस्तुत किया गया है कि किसी भी दशा में, अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन नहीं।

14. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में अस्पष्टीकृत विलंब अभियोजन के कथन को संदिग्ध बनाता है। कथित घटना 18 नवंबर 2014 को रात्रि 11:00 बजे हुई, फिर भी प्रथम सूचना रिपोर्ट 19 नवंबर 2014 को प्रातः 7:30 बजे, लगभग 8:30 घंटे के विलंब के पश्चात् दर्ज की गई। यह पर्याप्त अंतराल, जबकि पुलिस थाना अपराध स्थल से मात्र 11 किलोमीटर की दूरी पर स्थित था, अभियोजन के कथन की प्रामाणिकता और स्वतःस्फूर्तता के संबंध में तत्काल संदेह उत्पन्न करता है। ऐसा विलंब विचार-विमर्श, परामर्श और साक्ष्य को अनुकूलित करने का अवसर प्रदान करता है, जो अभियोजन के संपूर्ण मामले के साक्ष्यात्मक मूल्य को घातक रूप से कम करता है।

15. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अभियोजन प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में हुए विलंब के लिए कोई स्पष्टीकरण अभिलिखित करने में विफल रहा है। शिकायतकर्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह नहीं बताया है कि उसने अपनी पुत्री की हत्या की सूचना देने के लिए 8:30 घंटे तक प्रतीक्षा क्यों की। किसी भी स्पष्टीकरण के अभाव में, विलंब को "अस्पष्टीकृत" माना जाना चाहिए, जिससे यह सिद्धांत लागू होता है कि ऐसा विलंब अभियोजन के मामले के लिए घातक है। उन्होंने इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय का संदर्भ दिया, **मुन्ना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 7 अन्य, दांडिक अपील धारा 372 दं०प्र०सं० संख्या 543 वर्ष 2022**, जिसमें अपील को खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस बात का कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है कि अत्यधिक विलंब के पश्चात् अगले दिन प्रथम सूचना रिपोर्ट क्यों दर्ज की गई। विद्वान

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

अधिवक्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब के प्रश्न और अभियोजन के सिद्धांत पर उसके प्रभाव के संबंध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय थुलिया काली बनाम तमिलनाडु राज्य, (1972) 3 एससीसी 393 का भी संदर्भ दिया है, जिसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:-

“12. किसी अपराध के किए जाने के संबंध में पुलिस को रिपोर्ट तत्काल दर्ज कराने पर जोर देने का उद्देश्य उन परिस्थितियों के संबंध में शीघ्र सूचना प्राप्त करना है जिनमें अपराध किया गया था, वास्तविक अपराधियों के नाम और उनके द्वारा निभाई गई भूमिका के साथ-साथ घटनास्थल पर उपस्थित प्रत्यक्षदर्शियों के नाम प्राप्त करना है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब प्रायः अलंकरण का परिणाम होता है, जो पश्चात्विचार की उपज होता है। विलंब के कारण, रिपोर्ट न केवल स्वतःस्फूर्तता के लाभ से वंचित हो जाती है, बल्कि विचार-विमर्श और परामर्श के परिणामस्वरूप छद्म कथन, अतिरंजित विवरण या मनगढ़ंत कहानी प्रस्तुत किए जाने का खतरा भी उत्पन्न हो जाता है। इसलिए, यह आवश्यक है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में हुए विलंब का संतोषजनक रूप से स्पष्टीकरण किया जाना चाहिए।...”

16. इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति यह है कि 8:30 घंटे के विलंब ने शिकायतकर्ता को अन्य लोगों से परामर्श करने, झूठी कहानी गढ़ने और साक्ष्य का समन्वय करने के लिए पर्याप्त समय प्रदान किया। उनके अनुसार, पुलिस थाना केवल 11 किलोमीटर की दूरी पर होने के कारण विलंब और भी अस्पष्टीकृत हो जाता है। रात्रि के समय यात्रा की बाधाओं को ध्यान में रखते हुए भी, पुलिस थाने पहुँचना और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना युक्तिसंगत रूप से 1-2 घंटे से अधिक नहीं होना चाहिए। अभियोजन यह स्पष्टीकरण देने में विफल रहा है कि शिकायतकर्ता ने सुबह तक प्रतीक्षा क्यों की जबकि तत्काल कार्रवाई संभव और अनिवार्य दोनों थी। कम दूरी के आलोक में

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

विलंब का स्पष्टीकरण देने में यह विफलता अभियोजन के कथन को स्वभावतः संदिग्ध बनाती है।

17. आगे, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अभियोजन ने ऐसा कोई स्वतंत्र साक्षी प्रस्तुत नहीं किया है जो इस बात की पुष्टि कर सके कि शिकायतकर्ता ने घटना की तत्काल कोई रिपोर्ट की या घटना की शीघ्र रिपोर्ट करने का कोई प्रयास किया। पुलिस के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष घटना के समय या घटना के लगभग उसी समय किए गए किसी प्रकटीकरण का अभाव इस निष्कर्ष को और सुदृढ़ करता है कि विलंब का उपयोग ऐसी घटनाओं की कहानी गढ़ने के लिए किया गया, जिसमें अपीलकर्ता को झूठा फंसाया गया। उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय **दिलावर सिंह बनाम दिल्ली राज्य, (2007) 12 एससीसी 641** पर भरोसा किया है, जिसमें प्रस्तर संख्या 9 एवं 12 में निम्नानुसार धारित किया गया:-

"9. दांडिक विचारण में न्यायालय के लिए मूलभूत सिद्धांतों में से एक यह है कि रिपोर्ट दर्ज करने में हुए विलंब के लिए युक्तियुक्त स्पष्टीकरण की तलाश की जाए। विलंब कभी-कभी शिकायतकर्ता को शिकायत पर विचार-विमर्श करने और अलंकरण करने अथवा यहाँ तक कि मनगढ़ंत बातें बनाने का अवसर प्रदान करता है। विलंब मामले के निष्कलंक और अप्रदूषित कथन को प्रथम अवसर पर ही न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की संभावना को समाप्त कर देता है। इसीलिए यदि पुलिस या न्यायालय के समक्ष आने में विलंब होता है, तो न्यायालय सदैव आरोपों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं और संतोषजनक स्पष्टीकरण की तलाश करते हैं। यदि ऐसा संतोष नहीं बनता है, तो विलंब को अभियोजन के मामले के लिए घातक माना जाता है।"

12. शिकायतकर्ता ने यह कहते हुए विलंब को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि मामले की सूचना पुलिस को दी गई थी लेकिन पुलिस ने कोई

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

कार्रवाई नहीं की। ऐसे कथन को विलंब का स्पष्टीकरण दिया जाना शायद ही माना जा सकता है। यह कहना सबसे सरल बात है कि पुलिस ने, यद्यपि उसके समक्ष रिपोर्ट दर्ज की गई थी, कोई कदम नहीं उठाया था। लेकिन यह आवश्यक अभिलेखों को पुलिस से मंगाकर स्थापित किया जाना आवश्यक है कि वास्तव में पुलिस के समक्ष रिपोर्ट दर्ज की गई थी और पुलिस मामले में कार्रवाई करने में विफल रही थी।”

18. विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार रूप से तर्क दिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट प्राप्त प्रथम सूचना के समसामयिक अभिलेख के रूप में मूल्यवान है। जब इसे 8:30 घंटे के अस्पष्टीकृत विलंब के पश्चात् दर्ज किया जाता है, तो पुष्टिकारक साक्ष्य के रूप में इसका साक्ष्यात्मक मूल्य पर्याप्त रूप से कम हो जाता है। जब विलंब स्वयं इस बात पर संदेह उत्पन्न करता है कि दर्ज किया गया कथन स्वतःस्फूर्त विवरण है या रात भर में तैयार किया गया विचार-विमर्शित कथन, तब शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1) की गवाही की पुष्टि करने के लिए इसका सुरक्षित रूप से उपयोग नहीं किया जा सकता। उन्होंने जोरदार रूप से प्रस्तुत किया है कि विलंब का सुस्पष्ट, विश्वसनीय कारणों से स्पष्टीकरण देने का भार पूर्णतः अभियोजन पर है। चूंकि अभियोजन इस भार का निर्वहन करने में विफल रहा है, किसी भी स्पष्टीकरण का अभाव घातक है और संदेह का लाभ के सिद्धांत को लागू करते हुए अभियुक्त के पक्ष में इसका निराकरण किया जाना चाहिए।

19. इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, 8:30 घंटे के अस्पष्टीकृत विलंब, पुलिस थाने की कम दूरी, अपराध की गंभीरता और अभिलिखित किसी भी स्पष्टीकरण के पूर्ण अभाव का संचयी प्रभाव अभियोजन के मामले की वास्तविकता के संबंध में युक्तियुक्त संदेह उत्पन्न करता है। यह संदेह मात्र तकनीकी नहीं बल्कि सारभूत है, जो अभियोजन की कथा की मूल जड़ को प्रभावित करता है। इसलिए, केवल इस आधार पर अपीलकर्ता संदेह का लाभ पाने का अधिकारी है, दोषमुक्ति को न्यायोचित ठहराता है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

20. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे की प्रस्तुत किया कि अभियुक्त के पास पीड़िता की हत्या करने का कोई हेतुक नहीं था। अभिकथन के अनुसार, अपीलकर्ता और उसकी पत्नी गोमता के बीच विवाद था, और मृतका गोमता की बहन की पुत्री है। इसलिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता के लिए मृतका की हत्या करने का कोई अवसर नहीं था। अभियोजन अपीलकर्ता द्वारा मृतका की हत्या किए जाने के लिए किसी विश्वसनीय हेतुक को स्थापित करने में स्पष्ट रूप से विफल रहा है, और कथित हेतुक यह स्पष्ट करने के लिए पूर्णतः अपर्याप्त है कि अपीलकर्ता ने अपनी पत्नी के उस रिश्तेदार की हत्या क्यों की होगी, जिसके साथ उसका वैवाहिक विवाद था।

21. विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए उच्चतम न्यायालय के निर्णय **शिवाजी जेनु मोहिते बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1973) 3 एससीसी 219** पर भरोसा किया है, जिसमें यह मूलभूत सिद्धांत प्रतिपादित किया गया कि "संदेह, चाहे कितना भी गंभीर हो, प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता।" अभियोजन को घटनाओं की कड़ी को इतनी पूर्णता से सिद्ध करना चाहिए कि वह अभियुक्त की निर्दोषिता के अनुरूप किसी निष्कर्ष को न छोड़े। उपरोक्त मामले के प्रस्तर-6 का प्रासंगिक अंश, जिस पर उन्होंने भरोसा किया है, निम्नानुसार है:-

"6. तब, हमारे समक्ष जो रह जाता है, वे संदिग्ध परिस्थितियाँ हैं कि मृत शरीर को असामान्य स्थान पर उसके शरीर पर आभूषणों सहित जल्दबाजी में जला दिया गया प्रतीत होता है और अभियुक्त दाह-संस्कार के साथ अपने संबंध से झूठा इनकार कर रहे हैं। लेकिन फिर चिकित्सीय अभिमत और रासायनिक विश्लेषक के अभिमत तथा हेतुक के अभाव को देखते हुए, इतना ही कहा जा सकता है कि वे परिस्थितियाँ संदेह उत्पन्न करेंगी; लेकिन संदेह, कोई साक्ष्य नहीं है...।"

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

22. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यह सिद्धांत वर्तमान मामले में विशेष महत्व रखता है, जहाँ अभियोजन का संपूर्ण मामला हेतुक के लिए किसी साक्ष्यात्मक आधार के बिना विशुद्ध अनुमान पर आधारित है। विद्वान अधिवक्ता ने तथ्यात्मक परिदृश्य को रेखांकित किया है, जो यह प्रकट करता है कि कथित विवाद वैवाहिक प्रकृति का था, अपीलकर्ता और उसकी पत्नी गोमता के मध्य तक सीमित था, मृतका गोमता की मात्र एक पार्श्विक रिश्तेदार, भतीजी थी, पति के साथ घरेलू विवाद और उस पति की रिश्तेदार की हत्या करने के चरम कृत्य के बीच कोई तर्कसंगत संबंध नहीं हो सकता था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अभियोजन ने मृतका के प्रति विशेष रूप से निर्देशित किसी विशिष्ट शत्रुता, पूर्व धमकी, या आक्रामकता की किसी घटना का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है। अपीलकर्ता और मृतका के बीच किसी पूर्व संव्यवहार का पूर्ण अभाव है, जो हत्या के आशय को उत्पन्न कर सकता था, इसलिए, हेतुक का अभियोजन का सिद्धांत मात्र अटकल में परिवर्तित हो जाता है।

23. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अभियोजन द्वारा तारीखों, घटनाओं या विवरणों को निर्दिष्ट किए बिना "पूर्व शत्रुता" के अस्पष्ट अभिकथनों पर भरोसा करने का प्रयास उसके मामले की काल्पनिक प्रकृति को और प्रदर्शित करता है। शत्रुता के सामान्यीकृत अभिकथन घटना की तारीख के निकट हेतुक स्थापित करने वाले विशिष्ट, सिद्ध तथ्यों का स्थान नहीं ले सकते। अपीलकर्ता द्वारा अभिकथनों से इनकार और पूर्व शत्रुता के कारण झूठा फंसाए जाने का अभिकथन किसी ठोस साक्ष्य द्वारा अप्रतिवादित बना हुआ है, अभियोजन का हेतुक सिद्धांत अनुमान के दायरे में रह जाता है। जब हेतुक का आधारभूत तत्व असिद्ध है, उस पर खड़ा किया गया परिस्थितिजन्य साक्ष्य का ढाँचा टिक नहीं सकता, और केवल इस आधार पर अपीलकर्ता दोषमुक्ति का अधिकारी है।

24. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अभियोजन की ओर से स्वतंत्र साक्षी का परीक्षण करने में विफलता है, इसलिए, अभियोजन का मामला प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही ऐसे साक्षियों के अस्तित्व और विशिष्ट नामकरण के बावजूद किसी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

स्वतंत्र साक्षी का परीक्षण करने में उसकी विफलता से उत्पन्न गंभीर और असुधार्य दोष से ग्रस्त है। अभियोजन के अनुसार, लुतावन, इंदल और टुरी जैसे व्यक्ति घटना के समय या घटना के तुरंत बाद उपस्थित थे; तथापि, उनमें से किसी का भी विचारण न्यायालय के समक्ष परीक्षण नहीं किया गया, न ही इन स्वाभाविक साक्षियों को रोकने के लिए अभिलेख पर कोई स्पष्टीकरण है। यह चूक विशेष महत्व रखती है क्योंकि मामला एक ऐसी आवासीय स्थिति में या उसके निकट कथित रूप से किए गए हत्या के अपराध से संबंधित है जहाँ स्वतंत्र ग्रामीण उपलब्ध थे, फिर भी अभियोजन की संपूर्ण कहानी केवल निकट संबंधी और हितबद्ध साक्षियों की गवाही पर आधारित है।

25. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यह स्थापित विधिक सिद्धांत है कि यद्यपि संबंधी या हितबद्ध साक्षियों के साक्ष्य को मात्र संबंध के आधार पर खारिज नहीं किया जाना है, न्यायालय को ऐसे साक्ष्य की अत्यधिक सूक्ष्मता से जांच करनी चाहिए और स्वतंत्र पुष्टि की तलाश करनी चाहिए, विशेष रूप से जहाँ शत्रुता या झूठा फंसाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। **मसालती एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1964 एससीसी ऑनलाइन एससी 30** के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तर-14 एवं 16 में निम्नानुसार निर्णीत किया:-

"14. लेकिन, हमारा विचार है कि यह कहना अनुचित होगा कि साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपाती या हितबद्ध साक्षियों का साक्ष्य है। प्रायः, जहाँ गाँवों में गुट प्रचलित होते हैं और ऐसे गुटों के बीच शत्रुता के परिणामस्वरूप हत्याएँ की जाती हैं, दांडिक न्यायालयों को पक्षपाती प्रकार के साक्ष्य पर विचार करना पड़ता है। ऐसे साक्ष्य को केवल इस आधार पर कि वह पक्षपातपूर्ण है, यांत्रिक रूप से खारिज करना, अनिवार्यतः न्याय की विफलता का कारण बनेगा।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

16. ... लेकिन जहाँ किसी दांडिक न्यायालय को बड़ी संख्या में अपराधियों और बड़ी संख्या में पीड़ितों से संबंधित किसी अपराध के किए जाने के साक्ष्य से निपटना होता है, वहाँ यह परीक्षण अपनाना सामान्य है कि दोषसिद्धि तभी कायम रखी जा सकती है जब उसे दो या तीन या अधिक साक्षियों द्वारा समर्थित किया गया हो जो घटना का सुसंगत विवरण देते हैं.....”

26. यह प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1) मृतका की माता है, और अभियोजन साक्षी-2, राम सजीवन, शिकायतकर्ता का बहनोई है। दोनों स्वीकृत रूप से हितबद्ध साक्षी हैं जिनका विचारण के परिणाम में स्पष्ट भावनात्मक और पारिवारिक हित है। इसलिए, उनकी गवाही के लिए तटस्थ, अनासक्त व्यक्तियों से पुष्टि अपेक्षित थी, जो उपस्थित थे या घटना के तुरंत बाद पहुँचे थे। तथापि, प्रथम सूचना रिपोर्ट में लुतावन, इंदल और टुरी को ऐसे व्यक्तियों के रूप में नामित करने के बावजूद, जो कथित रूप से घटनास्थल पर आए थे, अभियोजन ने उनमें से किसी का भी परीक्षण नहीं करने का विकल्प चुना। इस चूक को न्यायोचित ठहराने के लिए मृत्यु, पता न चलना, शत्रुतापूर्ण होना, या अप्रासंगिकता जैसा कोई कारण अभिलिखित नहीं किया गया है। यह मौन बहुत कुछ कहता है और अभियोजन के विरुद्ध गंभीर रूप से विचार में लिया जाना चाहिए।

27. विद्वान अधिवक्ता ने तत्पश्चात् महत्वपूर्ण साक्षियों को रोकने के संबंध में विधिक स्थिति पर भरोसा किया है, जिसे माननीय उच्चतम न्यायालय ने **तखाजी हिराजी बनाम ठाकोर कुबेरसिंग चामनसिंग एवं अन्य, (2001) 6 एससीसी 145** के मामले में प्रस्तर-19 में प्रतिपादित किया है, जो निम्नानुसार है:-

“19. यदि कोई महत्वपूर्ण साक्षी, जो घटना के उद्गम या अभियोजन के मामले के किसी आवश्यक भाग को स्पष्ट करता, अन्यथा विश्वसनीय रूप से सामने नहीं लाया गया है, या जहाँ अभियोजन के मामले में कोई अंतराल या

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

दुर्बलता है जिसे ऐसे साक्षी का परीक्षण करके, जो उपलब्ध होते हुए भी परीक्षित नहीं किया गया, पूरा किया जा सकता था या दूर किया जा सकता था, अभियोजन के मामले को कमी से ग्रस्त कहा जा सकता है और ऐसे महत्वपूर्ण साक्षी को रोकना न्यायालय को अभियोजन के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य करेगा, यह मानते हुए कि यदि उस साक्षी का परीक्षण किया गया होता तो उसने अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया होता। दूसरी ओर यदि पहले से ही प्रबल साक्ष्य उपलब्ध है और अन्य साक्षियों का परीक्षण पहले से प्रस्तुत साक्ष्य की केवल पुनरावृत्ति या दोहराव होगा, ऐसे अन्य साक्षियों का परीक्षण न किया जाना महत्वपूर्ण नहीं हो सकता है। ऐसे मामले में न्यायालय को प्रस्तुत साक्ष्य की सार्थकता की सूक्ष्मता से जांच करनी चाहिए।

.....”

28. विद्वान अधिवक्ता ने आगे स्पष्ट किया कि साक्षियों के दमन या रोकने का सिद्धांत मामलों की संकीर्ण श्रेणी तक सीमित नहीं है; यह एक व्यापक साक्ष्यात्मक नियम है कि जहाँ उपलब्ध सर्वोत्तम साक्ष्य को रोक लिया जाता है, न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि वह उसे रोकने वाले पक्ष के प्रतिकूल होता। साक्ष्य अधिनियम की धारा 114(छ) इस सामान्य विधि की उपधारणा को समाहित करती है; जब कोई पक्ष ऐसे साक्ष्य को प्रस्तुत करने में विफल रहता है जो उसकी शक्ति और कब्जे में है, और जिसे उससे स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा की जाती, न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि ऐसा साक्ष्य, यदि प्रस्तुत किया जाता, उस पक्ष के विरुद्ध जाता। दांडिक विचारण पर लागू करने पर, इसका अर्थ है कि जहाँ अभियोजन स्वाभाविक, स्वतंत्र साक्षियों का परीक्षण करने से विरत रहता है, न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि उनकी गवाही अभियोजन की कथा का समर्थन नहीं करती और बल्कि बचाव पक्ष की सहायता करती।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

29. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि केवल हितबद्ध साक्षियों का परीक्षण किया गया है। अभियोजन ने मुख्य रूप से शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1), मृतका की माता, की गवाही पर भरोसा किया है, जिसका समर्थन केवल अभियोजन साक्षी-2, उसके बहनोई, द्वारा किया गया है, जो दोनों निकट संबंधी और इसलिए हितबद्ध साक्षी हैं, जबकि प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित किसी स्वतंत्र साक्षी (लुतावन, इंदल और टुरी) का परीक्षण नहीं किया गया।

30. आगे का तर्क यह कि चिकित्सीय साक्ष्य और अभियोजन के कथन के बीच विरोधाभास हैं, इस अर्थ में कि चिकित्सीय साक्ष्य प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य से असंगत है क्योंकि शव-परीक्षण आख्या में स्पष्ट रूप से केवल तीन मृत्यु-पूर्व चोटें दर्ज हैं, जबकि अभियोजन साक्षी-1 ने बयान दिया कि अपीलकर्ता ने चाकू से 5-6 वार किए। अखंडनीय चिकित्सीय विज्ञान और हितबद्ध प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के बीच यह महत्वपूर्ण विरोधाभास अभियोजन के मामले की मूल जड़ तक जाता है। उन्होंने उच्चतम न्यायालय के निर्णय **राम नारायण सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1975) 4 एससीसी 497** पर भरोसा किया है, जिसमें चिकित्सीय निष्कर्षों द्वारा प्रत्यक्षदर्शी विवरण को असंभव कर दिए जाने पर निम्नलिखित शब्दों में दोषमुक्त किया गया:-

"10. अंततः, मोहिंदर सिंह, अभियोजन साक्षी 16 का साक्ष्य है, जिन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में बयान दिया कि लगभग 8.00 या 8.30 बजे अपराहन जब वह अपने घर में उपस्थित थे, तब जोगिंदर सिंह वहाँ आया और उन्हें सूचित किया कि जग्गर सिंह ने सुरजीत सिंह पर गोली चलाई थी लेकिन गोली उसे नहीं लगी थी और उसके पश्चात् राम नारायण सिंह ने तेजा सिंह की गोली मारकर हत्या कर दी थी और मल सिंह तथा हाकम सिंह ने सुरजीत सिंह को घायल कर दिया था। यह भी घटना को 8.00 से 8.30 बजे अपराहन के बीच रखता है। इन सभी परिस्थितियों का संचयी प्रभाव स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष की ओर संकेत करता है कि घटना वास्तव में 8.00 बजे हुई थी और

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

यदि ऐसा है, तो अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि साक्षियों द्वारा अपीलकर्ताओं की पहचान कैसे की जा सकती थी।”

31. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, महत्वपूर्ण अंगों पर चाकू के अनेक वार से अनेक स्पष्ट चोटें/क्षत उत्पन्न होती हैं। बार-बार चाकू से वार किए जाने के दावे के विरुद्ध कुछ चोटें होना घातक विरोधाभास है। अभियोजन के पास इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि 5-6 वारों से केवल 3 चोटें क्यों हुईं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह एक स्थापित विधिक सिद्धांत है कि चिकित्सीय साक्ष्य, विशेष रूप से चोटों की प्रकृति, संख्या और आयामों से संबंधित तकनीकी मामलों में, जहाँ वह स्वभावतः असंभाव्य प्रत्यक्षदर्शी अभिकथनों से विरोध करता है, प्रबल होगा। विद्वान अधिवक्ता ने **पृथ्वीराज जयंतिभाई वनोल बनाम दिनेश दयाभाई वाला, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 493** पर भरोसा किया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णीत किया:-

"17. प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को सर्वोत्तम साक्ष्य माना जाता है जब तक उस पर संदेह करने के कारण न हों। अभियोजन साक्षी 2 और अभियोजन साक्षी 10 के साक्ष्य अखंडनीय हैं। यह केवल ऐसे मामले में है जहाँ चिकित्सीय साक्ष्य और मौखिक साक्ष्य के बीच घोर विरोधाभास हो, और चिकित्सीय साक्ष्य प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को असंभाव्य बनाता हो तथा प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के सत्य होने की सभी संभावनाओं को निरस्त करता हो, प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य पर अविश्वास किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, हम प्रत्यक्षदर्शी और चिकित्सीय साक्ष्य के बीच कोई असंगति नहीं पाते हैं। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना कि उसमें धारदार मुड़ा हुआ किनारा था, मुद्दामाल संख्या 5 एक साधारण लोहे की छड़ थी, ऐसा मानकर साक्ष्य के मूल्यांकन में घोर त्रुटि की।"

32. इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कि मूलभूत विरोधाभास, जब प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में हुए अस्पष्टीकृत विलंब, महत्वपूर्ण साक्षियों को

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

रोकने और कथित बरामदगी की संदिग्ध प्रकृति के साथ संचयी रूप से विचार किया जाता है, तो युक्तियुक्त संदेह का एक स्पष्ट और प्रबल संदेह उत्पन्न करता है। ऐसे दुर्बल आधारों पर आधारित दोषसिद्धि विकृत है और न्यायिक संवीक्षा में टिक नहीं सकती। उनके अनुसार, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **राम नारायण** (उपरोक्त) में प्रतिपादित विधि सिद्धांत वर्तमान मामले में पूर्णतः लागू होते हैं। इन बाध्यकारी पूर्वनिर्णयों के आलोक में, अभियोजन का मामला युक्तियुक्त संदेह से परे प्रमाण के स्तर को पूरा करने में विफल रहता है। इसलिए, अपीलकर्ता संदेह का लाभ पाने का अधिकारी है, और दोषमुक्ति का आदेश ही एकमात्र विधिक रूप से संधारणीय परिणाम है।

33. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि बरामदगी विधि के अनुसार सिद्ध नहीं की गई है क्योंकि अपीलकर्ता के घर की छप्पर की छत से रक्तरंजित चाकू बरामद किया गया जो एक खुला स्थान है और सभी के लिए सुलभ है। उनके अनुसार, माननीय उच्चतम न्यायालय ने लगातार निर्णीत किया है कि छतों/खुले स्थानों से की गई बरामदगियों में विश्वसनीयता का अभाव होता है क्योंकि कोई भी वस्तु रख सकता है। उन्होंने **पुलुकुरी कोट्टया बनाम एम्परर (1947) पीसी** के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें बंबई उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णीत किया:-

"9. खोजे गए तथ्य में वह स्थान जहाँ से वस्तु प्रस्तुत की गई और अभियुक्त का ऐसे स्थान का ज्ञान सम्मिलित है। सूचना का संबंध विशिष्ट रूप से खोज से होना चाहिए।..."

34. आगे तर्क यह कि बरामदगी ज्ञापन प्रकटीकरण और चाकू के स्थान के बीच विशिष्ट संबंध सिद्ध करने में विफल है। मात्र प्रस्तुत किया जाना पर्याप्त नहीं है, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि कोई विधि वैज्ञानिक आख्या रक्तरंजित चाकू को मृतका से संबद्ध नहीं करती है, केवल बरामदगी दोषसिद्धि को कायम नहीं रख सकती। उन्होंने **गोविंद बनाम हरियाणा राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन**

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

एससी 2456 के मामले में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया कि बरामद किया गया हथियार विधि वैज्ञानिक आख्या से मेल खाने पर भी, यदि बरामदगी स्वतंत्र सत्यापन के बिना या अभिरक्षा की अखंड श्रृंखला के बिना किसी सुलभ स्थान से की गई हो, तो बरामदगी अविश्वसनीय है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, किसी खुले या सामान्य रूप से सुलभ स्थान से की गई बरामदगी साक्ष्यात्मक कड़ी को तोड़ देती है। वर्तमान मामला उसी दोष से ग्रस्त है, कथित बरामदगी अग्राह्य और अविश्वसनीय हो जाती है

35. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का आगे तर्क कि बरामदगी स्वीकृत रूप से एक भी स्वतंत्र साक्षी को संबद्ध किए बिना, स्थापित प्रक्रिया से पूर्ण विचलन में की गई थी। पूर्व-निश्चित पुलिस साक्षियों पर भरोसा करना बरामदगी को स्वभावतः संदिग्ध बनाता है। उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय के **मणि बनाम तमिलनाडु राज्य, (2009) 17 एससीसी 273** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें निम्नानुसार धारित किया गया:-

26. कथित रक्त के धब्बे अपीलकर्ता के अनन्य रूप से थे या उसके अनन्य कब्जे में थे, हमने आगे इंगित किया है कि खोज पूर्णतः दिखावटी थी। एक अन्य अत्यंत प्रासंगिक कारक है जिसकी दोनों न्यायालयों द्वारा उपेक्षा की गई कि अभियोजन ने यह सिद्ध करने का कभी कोई प्रयास नहीं किया कि कपड़े अपीलकर्ताओं के थे। इस आशय का सुझाव देने वाला वास्तव में कोई साक्ष्य नहीं है....

31. इसलिए हम बचाव अधिवक्ता द्वारा उठाए गए अभियुक्त के अभिकथन को स्वीकार करेंगे कि यह स्पष्ट रूप से संदेह का लाभ दिए जाने का मामला है। इसलिए हम अभियुक्त को संदेह का लाभ प्रदान करना उचित समझते हुए यह निर्णीत करते हैं कि अभियोजन युक्तियुक्त संदेह से परे अपने मामले को

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

सिद्ध करने में सक्षम नहीं रहा है। अतः हम अपील स्वीकार करते हैं। तदनुसार अपील स्वीकार की जाती है। प्रश्नगत निर्णयों और दोषसिद्धि को अपास्त किया जाता है। अभियुक्त को तत्काल स्वतंत्र किया जाए, जब तक कि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता न हो।”

36. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की कथित टॉर्च की बरामदगी न होने के बिंदु पर आगे यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट और अभियोजन साक्षी दोनों यह अभिकथित करते हैं कि हमलावर रात 11:00 बजे घोर अंधेरी रात में टॉर्च लेकर आए थे, फिर भी विचारण के दौरान एक भी टॉर्च को जब्त, बरामद या प्रस्तुत नहीं किया गया। अन्वेषण अधिकारी ने किसी प्रकाश उपकरण को अभिलिखित, वर्णित या सुरक्षित नहीं किया। यह चूक रात्रिकालीन घटना के अभियोजन के कथन को गंभीर रूप से कमजोर करती है और अलंकरण या मनगढ़ंत कहानी का संकेत देती है।

37. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, जहाँ अभियोजन ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य को रोकता है जिसे प्रस्तुत किया जाना चाहिए, विशेष रूप से ऐसे वस्तुओं को जो घटनास्थल के पुनर्निर्माण के लिए केंद्रीय हैं, न्यायालय यह प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य है कि ऐसे साक्ष्य, यदि प्रस्तुत किए जाते, तो अभियोजन के मामले का खंडन करते। टॉर्चों का प्रस्तुत न किया जाना कथित घटनास्थल पर दृश्यता, उपस्थिति और रक्त के धब्बों के संबंध में अभियोजन को आवश्यक पुष्टि से वंचित करता है।

38. इसलिए, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की है कि यह न्यायालय इस अपील को स्वीकार करने और विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध पारित 5 अप्रैल 2018 की दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त करने की कृपा करे। कि अपीलकर्ता को उपरोक्त आधारों पर भादंसा की धारा 302 और 452 के अधीन विरचित सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाए।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

39. वैकल्पिक रूप से, यह तर्क दिया गया है कि यदि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अपीलकर्ता ने अपराध किया है, उसे भादंसा की धारा 302 के अधीन दंडनीय 'हत्या' के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह अपीलकर्ता के किसी आशय या पूर्वनियोजित मन के बिना किया गया था। उन्होंने आगे वर्तमान मामले के तथ्यात्मक परिदृश्य पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि अपराध, यदि कोई हो, तो अचानक आवेग में किया गया था और इस प्रकार, किया गया अपराध भादंसा की धारा 304 के अधीन दंडनीय होगा और भादंसा की धारा 302 के अधीन नहीं।

40. इसके विपरीत, श्री बिपुल कुमार सिंह, विद्वान राज्य अधिवक्ता, ने प्रस्तुत किया कि यह ऐसा मामला है जहाँ प्रत्यक्षदर्शी विवरण मृतका की माता तथा मृतका के परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य किसी का नहीं है और हत्या करने में प्रयुक्त हथियार वर्तमान अपीलकर्ता की निशानदेही पर बरामद किया गया है, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने वर्तमान अपीलकर्ता को आजीवन कारावास का दंडादेश देने में कोई त्रुटि नहीं की। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि अभियोजन का मामला अभियोजन साक्षी-1 श्रीमती तकदीरा, जो मृतका कंचना की माता तथा इस मामले में सूचनाकर्ता भी हैं, के साक्ष्य के आधार पर स्थापित हुआ है। वह सबसे महत्वपूर्ण साक्षी हैं और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं तथा उनका परीक्षण अभियोजन साक्षी संख्या 1 के रूप में किया गया है। अपीलकर्ता-अभियुक्त का विवाह अभियोजन साक्षी-1 की बहन, अर्थात् गोमता, से हुआ था और उसने अपनी पत्नी के अलग रहने के लिए अभियोजन साक्षी-1 और उसकी पुत्री कंचना (मृतका) को दोषी ठहराया। दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को, अपीलकर्ता-अभियुक्त आया और अभियोजन साक्षी-1 तथा उसकी पुत्री को अपनी पत्नी के उसे छोड़कर चले जाने के लिए उत्तरदायी होने का आरोप लगाते हुए झगड़ा करने और गाली-गलौज करने लगा। जब अभियोजन साक्षी-1 ने उसे गाली-गलौज करने से रोका, तो उसने कंचना की छाती में चाकू से वार किया और आगे चोटें पहुँचाईं। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अपने निर्णय में कहा है कि बचाव पक्ष

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

अभियोजन साक्षी-1 का प्रतिपरीक्षण करने में विफल रहा। अतः अभियोजन साक्षी-1 की गवाही अप्रतिवादित बनी हुई है।

41. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नाहर सिंह (मृत) एवं अन्य, (1998) 3 एससीसी 561** पर भरोसा किया है, जिसमें निम्नानुसार निर्णीत किया गया है:-

"13. यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि अभियोजन साक्षी 1 के बयान के उस भाग का अभियुक्त द्वारा प्रतिपरीक्षण नहीं किया गया था। विलंब के स्पष्टीकरण पर प्रतिपरीक्षण के अभाव में, अभियोजन साक्षी 1 का साक्ष्य अप्रतिवादित रहा और उच्च न्यायालय द्वारा उस पर विश्वास किया जाना चाहिए था। साक्ष्य अधिनियम की धारा 138 विपक्षी द्वारा साक्ष्य में प्रस्तुत किए गए साक्षी का प्रतिपरीक्षण करने का मूल्यवान अधिकार प्रदान करती है। उस उपबंध का दायरा साक्ष्य अधिनियम की धारा 146 द्वारा किसी साक्षी से प्रश्न किए जाने की अनुमति देकर विस्तारित किया गया है:

(1) उसकी सत्यता की परीक्षा करने के लिए,

(2) यह पता लगाने के लिए कि वह कौन है और जीवन में उसकी स्थिति क्या है, या

(3) उसके चरित्र को क्षति पहुँचाकर उसकी विश्वसनीयता को डगमगाने के लिए, यद्यपि ऐसे प्रश्नों का उत्तर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसे अपराध में लिप्त करने की प्रवृत्ति रख सकता है या उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी दंड या समपहरण के लिए उजागर कर सकता है या उजागर करने की प्रवृत्ति रख सकता है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

14. लॉर्ड हर्शेल, एल०सी० द्वारा ब्राउन बनाम उन [(1893) 6 आर 67] में की गई प्रायः उद्धृत टिप्पणी उन उपबंधों में अंतर्निहित सिद्धांत को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करती है। यह इस प्रकार है:

“मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी वाद के समुचित संचालन के लिए, जहाँ यह सुझाव देना अभिप्रेत हो कि कोई साक्षी किसी विशेष बिंदु पर सत्य नहीं बोल रहा है, प्रतिपरीक्षा में पूछे गए कुछ प्रश्नों द्वारा उसका ध्यान उस तथ्य की ओर आकृष्ट करना पूर्णतः आवश्यक है, जिससे यह दर्शाया जा सके कि वह लांछन लगाए जाने का आशय है, और उसके साक्ष्य को लेकर उसे पूर्णतः अप्रतिपादित विषय के रूप में जाने न दिया जाए, और फिर, जब उसके लिए उन परिस्थितियों को, जो यह संकेत करती हैं कि उसके द्वारा बताई गई कहानी पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए, स्पष्ट करना असंभव हो, जबकि यदि ऐसे प्रश्न उससे पूछे गए होते तो संभवतः वह ऐसा करने में सक्षम होता, यह तर्क दिया जाए कि वह विश्वसनीयता के अयोग्य साक्षी है। मेरे लॉर्ड्स, मैंने सदैव यह समझा है कि यदि आप किसी साक्षी की विश्वसनीयता पर आक्षेप करना चाहते हैं, तो जब वह साक्षी-कक्ष में हो, आप उसके लिए उसके समक्ष उपलब्ध किसी भी स्पष्टीकरण को देने का अवसर प्रदान करने के लिए बाध्य हैं; और, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, यह न केवल किसी वाद के संचालन में व्यावसायिक आचरण का नियम है, बल्कि साक्षियों के साथ निष्पक्ष व्यवहार और उचित व्यवहार के लिए आवश्यक है।”

यह पहलू दुर्भाग्यवश उच्च न्यायालय से छूट गया जब उसने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि विलंब के लिए स्पष्टीकरण बिल्कुल भी विश्वसनीय नहीं है। यह कारण, अतः, विश्वसनीय होने से बहुत दूर है।”

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

42. विद्वान अधिवक्ता ने वेल्स पिल्लई पडकलिंगम बनाम परमानंदम येसुदासन, एआईआर 1954 टीसी 152 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया, जिसमें निम्नानुसार निर्णीत किया गया है:-

“विद्वान मुंसिफ ने इस परिस्थिति पर ध्यान नहीं दिया और न ही उन्होंने इस बिंदु पर प्रतिवादी 1 से प्रतिपरीक्षा करने में वादी की चूक के परिणाम पर विचार किया। वाद का विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए परस्पर विरोधी मामलों की सत्यता तक पहुँचने के उद्देश्य से किया जाता है। साक्षी-कक्ष में प्रवेश करने वाला प्रत्येक साक्षी सत्य का साक्षी बनकर ऐसा करता है। प्रतिपरीक्षा किसी साक्षी की सत्यता तथा उसकी कहानी की शुद्धता और पूर्णता की परीक्षा करने के उद्देश्य से एक शक्तिशाली और मूल्यवान साधन है।” (हैनवर्थ, एम०आर० द्वारा, जिसे सैंकी, एल०सी० द्वारा ‘मैकेनिकल एंड जनरल इनवेंशन्स कंपनी बनाम ऑस्टिन मोटर कंपनी’, 1935 एसी 346 पृष्ठ 360 (ए) में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है।)

इसकी प्रभावशीलता की सीमा निस्संदेह उस अस्त्र का प्रयोग करने वाले की दक्षता पर निर्भर करती है, किंतु प्रत्येक प्रतिपरीक्षक को, और यदि वह सावधान हो तो कर सकता है, प्रतिपरीक्षा में मुख्य-परीक्षा में दिए गए साक्ष्य के जिस भाग को चुनौती दी गई है, उसे इंगित करना चाहिए और ऐसा करने में चूक होने पर यह निष्कर्ष निकलेगा कि साक्ष्य स्वीकार किया गया है, बेशक इस पर अंतर्निहित रूप से असंभाव्य होने के आधार पर आक्षेप किए जाने के अधीन। यह अमेरिका, इंग्लैंड और इस देश में नियम है, जैसा कि निम्नलिखित प्राधिकारों से स्पष्ट है।

“प्रतिपरीक्षा का अवसर वास्तविक प्रतिपरीक्षा के समतुल्य—

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

प्रतिपरीक्षण द्वारा साक्ष्यात्मक कथनों की परीक्षा किए जाने की अपेक्षा करने वाले सिद्धांत को सदैव इस रूप में समझा गया है कि आवश्यक रूप से वास्तविक प्रतिपरीक्षण नहीं, बल्कि केवल यदि वांछित हो तो प्रतिपरीक्षण करने के अधिकार का प्रयोग करने का अवसर आवश्यक है। कारण यह है कि, जहाँ कहीं विरोधी ने प्रस्तुत अवसर का लाभ उठाने से इनकार किया है, यह माना जाना चाहिए कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उसका विश्वास था कि साक्ष्यात्मक कथन का बिल्कुल भी खंडन नहीं किया जा सकता था या प्रतिपरीक्षण द्वारा उसे विचलित करने की आवश्यकता नहीं थी। अवसर प्राप्त होने और फिर भी मना करने में, उसने उस साक्षी के प्रतिपरीक्षण से अपेक्षित किए जा सकने वाले सभी लाभ प्राप्त कर लिए हैं। यह सिद्धांत पूर्णतः स्थापित है।" विगमोर ऑन एविडेंस खंड II, प्रस्तर 1371:

“एक नियम के रूप में किसी पक्षकार को बारी-बारी से अपने विरोधी के प्रत्येक साक्षी के समक्ष अपने स्वयं के मामले का उतना भाग प्रस्तुत करना चाहिए जितना उस विशिष्ट साक्षी से संबंधित है या जिसमें उसका कोई हिस्सा है, उदाहरण के लिए, यदि साक्षी ने किसी वार्तालाप के संबंध में साक्ष्य दिया है, तो विरोधी अधिवक्ता को यह इंगित करना चाहिए कि वह ऐसे संस्करण को कितना स्वीकार करता है, या साक्षी के समक्ष एक भिन्न संस्करण सुझाना चाहिए। यदि वह कोई प्रश्न नहीं करता है तो इंग्लैंड में, यद्यपि संभवतः आयरलैंड में नहीं, सामान्यतः यह माना जाएगा कि उसने साक्षी के विवरण को स्वीकार कर लिया है। ‘फ्लैनागन बनाम फोबी’, (1918) 2 आइआर० आर० 361, 383-9, (सी० ए०)(बी); – ‘ब्राउन बनाम डन’, (1893) 6 आर० 67, 76-7, (एच० एल०)(सी)।”

“इसके अलावा, जहाँ यह सुझाव देना आशयित हो कि साक्षी किसी विशिष्ट बिंदु पर सत्य नहीं बोल रहा है, वहाँ प्रतिपरीक्षण द्वारा पहले उसका

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

ध्यान उस तथ्य की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए, ताकि उसे स्पष्टीकरण का अवसर मिल सके; और यह संभवतः उन सभी मामलों में लागू होता है जिनमें साक्षी की विश्वसनीयता पर आक्षेप करना प्रस्तावित हो। ऐसे प्रश्नों को विधान द्वारा साक्षी द्वारा पूर्व में किए गए विरोधाभासी कथन के प्रमाणित किए जाने की पूर्ववर्ती शर्त बनाया गया है। प्रतिपरीक्षण करने में विफलता, तथापि, सदैव साक्षी के साक्ष्य की स्वीकृति के समान नहीं होगी, उदाहरणार्थ, यदि साक्षी को पहले से इसके विपरीत सूचना दी गई हो, या कहानी स्वयं अविश्वसनीय या काल्पनिक स्वरूप की हो, या विरत रहना मात्र शिष्टता के कारण हुआ हो, जैसे कि जब तलाक के मामलों में छोटे बच्चों को अपने माता-पिता की ओर से साक्षी के रूप में बुलाया जाता है, या जब अधिवक्ता इंगित करता है कि वह केवल सुविधा के लिए समर्थन कर रहा है, उदाहरणार्थ, समय बचाने के लिए और जहाँ एक ही बिंदु पर कई साक्षियों को बुलाया जाता है वहाँ उन सभी का प्रतिपरीक्षण करना सदैव आवश्यक नहीं है।” फिलिप्सन ऑन एविडेंस, 9वाँ संस्करण, 1952, पृष्ठ 497 एवं 498।”

“प्रतिपरीक्षण करते समय अधिवक्ता इतना करने के लिए बाध्य है; उसे अपने विरोधी के प्रत्येक साक्षी के समक्ष, बारी-बारी से, अपने स्वयं के मामले का उतना भाग प्रस्तुत करना चाहिए जितना उस विशिष्ट साक्षी से संबंधित है या जिसमें उस साक्षी का कोई हिस्सा था। अतः, यदि वादी ने प्रतिवादी के साथ हुई किसी वार्तालाप के संबंध में साक्ष्य दिया है, प्रतिवादी के अधिवक्ता का यह कर्तव्य है कि वादी के प्रतिपरीक्षण द्वारा यह इंगित करे कि वार्तालाप के वादी के विवरण का कितना भाग वह स्वीकार करता है, और कितना भाग वह विवादित करता है, तथा यह सुझाव दे कि प्रतिवादी का विवरण क्या होगा। यदि वह इसके संबंध में कोई प्रश्न नहीं करता है, तो यह माना जाएगा कि उसने

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

वादी के विवरण को संपूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया है।” ओडजर्स प्लीडिंग एंड प्रैक्टिस, 13वाँ संस्करण, पृष्ठ 261।”

“इस बात पर अत्यधिक बल दिया जाना संभव नहीं है कि न्याय प्रशासन की प्रणाली विरोधी पक्ष के साक्षियों के साक्ष्य की परीक्षा करने के प्रयोजन से उनके प्रतिपरीक्षण की अनुमति देती है, और यह मानना होगा कि जब साक्षियों की उस प्रकार परीक्षा नहीं की गई, तो उनके साक्ष्य को स्वीकार किया जाना है, जब तक कि निस्संदेह कोई अंतर्निहित असंभाव्यताएँ.....” वोट, न्यायमूर्ति द्वारा – ‘करनिदान सरदा बनाम सैलजा कांता’, एआईआर 1940 पटना 683 पृष्ठ 685 पर (डी)।”

43. उपर्युक्त प्रतिपादित विधिक सिद्धांतों के दृष्टिगत, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह स्पष्ट था कि विद्वान विचारण न्यायालय ने सही दृष्टिकोण अपनाया है कि रामसजीवन की परीक्षा अभियोजन साक्षी संख्या 2 (अभियोजन साक्षी-2) के रूप में की गई है, जिसने अपने साक्ष्य में कहा है कि जब अभियोजन साक्षी-1 ने शोर मचाया तब वह घटनास्थल पर पहुँचा। वह एक टॉर्च लेकर जा रहा था और उसके प्रकाश में उसने अपराध करने के बाद अभियुक्त को भागते हुए देखा। बचाव पक्ष ने यह अभिवाक् प्रस्तुत किया है कि अभियोजन साक्षी- 2 द्वारा ले जाई जा रही टॉर्च को विवेचक द्वारा कब्जे में नहीं लिया गया और कोई बरामदगी ज़ापन तैयार नहीं किया गया। इस संबंध में राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के **हरि सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 13 एससीसी 756** के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें निम्नानुसार निर्णीत किया गया है:-

“11. यह सत्य है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार हत्या की रात चाँदनी रहित थी लेकिन हमारे पास प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है जब वे कहते हैं कि उन्होंने टॉर्च के प्रकाश में

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

अभियुक्त की पहचान की थी, विशेष रूप से जब दोनों पक्ष एक ही गाँव के थे और एक-दूसरे को भली-भाँति जानते थे। हमारा मत है कि केवल इसलिए कि टॉर्च को एएसआई द्वारा कब्जे में नहीं लिया गया था, इसका यह अर्थ नहीं होगा कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथन विश्वसनीय नहीं थे।”

44. आगे, उच्चतम न्यायालय ने **दलबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2008) 11 एससीसी 425** में निम्नानुसार निर्णीत किया है:-

"10. अपीलकर्ता का यह पक्ष कि अंधेरी रात में आवाज से पहचान संभव नहीं हुई होगी, स्पष्टतः असंधारणीय है। अंधेरी रात में कुछ मामलों में चक्षुदर्शी पहचान कठिन हो सकती है लेकिन यदि कोई व्यक्ति दूसरे से परिचित और निकट संबंधी है, तो बोलने के ढंग, चाल-ढाल और आवाज से पहचान संभव है।

11. अनवर हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1982) 1 एससीसी 491: 1982 एससीसी (क्रि) 263 : एआईआर 1981 एससी 2072] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि पर्याप्त प्रकाश नहीं भी हो, कोई साक्षी ऐसे व्यक्ति की पहचान कर सकता है, जिससे वह पर्याप्त रूप से परिचित है या जिसके साथ घनिष्ठ संबंध हैं, उसकी आवाज, चाल-ढाल, चेहरे की बनावट आदि से। अतः जहाँ तक अपीलकर्ता को पहचानने के उसके दावे का संबंध है, अभियोजन साक्षी 8 के साक्ष्य को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है।"

45. इस प्रकार, राज्य के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अभियोजन साक्षी -1 और अभियोजन साक्षी -2 दोनों ने साक्ष्य दिया है कि लालटेन जल रही थी, जो अभियोजन साक्षी-6 द्वारा तैयार और सिद्ध किए गए स्थल-नक्शे से भी स्पष्ट था। अपीलकर्ता - अभियुक्त सूचनादाता की बहन का पति था और उसी गाँव में पास में ही रहता था। साथ

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

ही अभियोजन साक्षी -2 ने दो अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर अपीलकर्ता -अभियुक्त को पकड़ने का प्रयास किया लेकिन सफल नहीं हो सके क्योंकि अपीलकर्ता-अभियुक्त ने उन्हें धमकी दी कि यदि वे उसके पास आने का प्रयास करेंगे तो वह उन्हें जान से मार देगा। अभियोजन साक्षी-1 के साक्ष्य से यह भी स्पष्ट है कि प्रारंभ में अभियुक्त और सूचनादाता के बीच मौखिक विवाद हुआ जिसके बाद अपीलकर्ता-अभियुक्त ने मृतक पर हमला किया। उपर्युक्त के दृष्टिगत अपीलकर्ता -अभियुक्त की पहचान निर्णायक रूप से स्थापित है।

46. राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता - अभियुक्त के प्रकटीकरण कथन के आधार पर, अपराध के कारित किए जाने में प्रयुक्त चाकू अपीलकर्ता -अभियुक्त के कहने पर अपीलकर्ता -अभियुक्त के घर में एक "छप्पर" से बरामद किया गया था, जिसे अभियोजन साक्षी-6, अभियोजन साक्षी -7 और अभियोजन साक्षी -8 द्वारा विधिवत सिद्ध किया गया था। विधि वैज्ञानिक आख्या के अनुसार घटना स्थल से बरामद चाकू और अन्य वस्तुओं पर मानव रक्त पाया गया था। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के आवश्यक तत्वों के अनुसार जो हैं (i) अभियुक्त द्वारा दी गई सूचना से उस तथ्य का पता चलना चाहिए जो ऐसी सूचना का प्रत्यक्ष परिणाम है, (ii) दी गई सूचना का केवल वही भाग जो उक्त बरामदगी से स्पष्ट रूप से संबंधित है अभियुक्त के विरुद्ध ग्राह्य है और (iii) तथ्यों की खोज ऐसे अपराध के कारित किए जाने से संबंधित होनी चाहिए, हत्या के हथियार की बरामदगी अभियोजन द्वारा विधिवत सिद्ध की गई है।

47. डॉ॰ शिव प्रसाद यादव की परीक्षा अभियोजन साक्षी-3 के रूप में की गई है। उन्होंने मृतक के शरीर पर मृत्युपूर्व चोटों को सिद्ध किया है जो बरामद किए गए चाकू से कारित की जा सकती थीं।

48. अतः, विद्वान राज्य अधिवक्ता ने कहा कि वर्तमान मामले में, अभियोजन ने अपीलकर्ता का अपराध युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित कर दिया है। विद्वान विचारण

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

न्यायालय ने अपीलकर्ता को धारा 302 और 452 भादंसा के अधीन सही रूप से दोषसिद्ध किया और दंडित किया है। अतः, वर्तमान अपील इस माननीय न्यायालय द्वारा खारिज की जा सकती है।

विचार-विमर्श एवं निष्कर्ष

49. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने और संदर्भित किए गए वाद विधियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात, हम पाते हैं कि अभियोजन ने अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने के लिए लगभग आठ साक्षियों की परीक्षा की है और ग्यारह दस्तावेजों को प्रदर्शित किया है। स्पष्टतः, मामला पूर्णतः दो चक्षुदर्शी साक्षियों, अर्थात् अभियोजन साक्षी-1 (श्रीमती तकदीरा) और अभियोजन साक्षी-2 (राम सजीवन) के साक्ष्य पर आधारित है। चिकित्सा विशेषज्ञ अभियोजन साक्षी-3 (डॉ० एस०पी० यादव) ने कारित की गई चोटों का समर्थन किया है और अभियोजन साक्षी-8 (राम नरेश) ने अपराध में प्रयुक्त हथियार की बरामदगी का समर्थन किया है।

50. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि आदेश पर मुख्यतः इस आधार पर आपत्ति की है कि (i) प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में अत्यधिक विलंब हुआ था, (ii) दोषसिद्धि केवल संबंधी साक्षियों पर आधारित है और प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित स्वतंत्र साक्षियों की परीक्षा नहीं की गई है, (iii) अपराध कारित करने का कोई हेतु नहीं है, (iv) चाकू (अपराध में प्रयुक्त हथियार) की बरामदगी संदिग्ध है, (v) प्रत्यक्षदर्शी के विवरण और चिकित्सीय साक्ष्य में विरोधाभास और विसंगति है, (vi) टॉर्च की कोई बरामदगी नहीं हुई है, जो प्रकाश का एकमात्र स्रोत है, जिससे अभियुक्त/अपीलकर्ता की पहचान संदिग्ध हो जाती है और (vii) वैकल्पिक रूप से यह प्रस्तुत किया गया है कि किसी भी दशा में, यदि दोषसिद्धि कायम रखी जाती है तो किसी भी स्थिति में वही धारा 302 भादंसा के अधीन नहीं हो सकती है क्योंकि हत्या करने का

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

कोई पूर्वनियोजित आशय नहीं था और अभियुक्त को धारा 304 भादंसा के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है न कि धारा 302 भादंसा के अधीन।

51. यह न्यायालय इनमें से प्रत्येक तर्क का क्रमशः निराकरण करना पसंद करता है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क के संबंध में कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में 8.30 घंटे का विलंब हुआ था, जो उनके अनुसार अभियोजन वाद के लिए घातक है, यह न्यायालय पाता है कि घटना का समय और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने का समय विलंब की अवधि से अधिक महत्वपूर्ण है। स्वीकार्यतः, यह अभिलेख पर है कि घटना का समय 18.11.2014 की रात्रि 11 बजे है और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने का समय 19.11.2014 की प्रातः 7:30 बजे है। यह भी अभिलेख पर आया है कि पुलिस थाने की दूरी घटनास्थल से 11 किलोमीटर है। स्पष्टतः, ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान अधिवक्ता इस सबसे महत्वपूर्ण तथ्य को भूल रहे हैं कि अपराध का घटनास्थल ग्रामीण गाँव है, जहाँ स्पष्टतः बिजली भी उपलब्ध नहीं थी। आगे, हमें यह समझना होगा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में कोई भी विलंब, अपने आप में, अभियोजन के मामले पर संदेह करने का उचित आधार नहीं हो सकता है। न्यायालय को किसी दिए गए मामले में विलंब के संभावित कारण को देखना होगा और क्या विलंब किसी विवरण को गढ़ने के किसी प्रयास के कारण हुआ है। वर्तमान मामले में, निस्संदेह, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब है, लेकिन हम केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब के आधार पर अभियोजन के विवरण पर संदेह करने का कोई आधार नहीं पाते हैं। यह देखा जाना है कि घटना रात्रि 11 बजे एक ग्रामीण गाँव में हुई थी। हंगामे और भ्रम की स्थिति में, हम दी गई परिस्थिति में अगले दिन प्रातः 7:30 बजे प्रातःकाल के प्रथम घंटे में तुरंत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब में कुछ भी अनुचित नहीं पाते हैं। आगे, हमारा मत है कि अभियोजन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों और अभियोजन द्वारा प्रस्तुत अन्य साक्षियों के साक्ष्यों के बल पर अपने मामले को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करने में सक्षम रहा है। अतः, हम अपीलकर्ताओं के इस तर्क को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं कि प्रथम

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब अभियोजन के मामले के लिए घातक है। उच्चतम न्यायालय ने रविंदर कुमार बनाम पंजाब राज्य, 2001(7) एससीसी 690 के मामले में निम्नानुसार निर्णीत किया है:-

“13. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब के आधार पर अभियोजन के मामलों पर आक्षेप लगभग आपराधिक मामलों में एक रूढ़िबद्ध पुनरावृत्ति के रूप में जड़ हो गया है। अधिकांश आपराधिक मामलों में यह एक बार-बार घटित होने वाली विशेषता है कि पुलिस को प्रथम सूचना देने में कुछ विलंब होगा। यह स्मरण रखना होगा कि विधि ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए कोई समय निर्धारित नहीं किया है। अतः विलंबित प्रथम सूचना रिपोर्ट अवैध नहीं हैं। निस्संदेह प्रथम सूचना रिपोर्ट का शीघ्र और तत्काल दर्ज किया जाना आदर्श है क्योंकि इससे अभियोजन को दोहरा लाभ प्राप्त होगा। पहला यह है कि यह बिना किसी समय अंतराल के विवेचना के प्रारंभ होने का अवसर प्रदान करता है। दूसरा यह है कि यह किसी संभावित मिथ्या विवरण को गढ़ने के किसी अवसर को समाप्त कर देता है। शीघ्र दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के इन दो लाभों को छोड़कर, विलंबित प्रथम सूचना रिपोर्ट के अवगुण किसी अभियोजन के मामले के लिए घातक के रूप में प्रभावी नहीं हो सकते हैं। यह अनदेखा नहीं किया जा सकता कि शीघ्र दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट भी उसमें अंतर्विष्ट विवरण की सत्यता की निरपवाद गारंटी नहीं है।

14. जब किसी मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट में विलंब होने के आधार पर आलोचना की जाती है तो न्यायालय को यह देखना होगा कि ऐसा विलंब क्यों हुआ। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब होने के विभिन्न वास्तविक कारण हो सकते हैं। ग्रामीण लोग बिना किसी समय के विलंब के अपराध की सूचना पुलिस को देने की आवश्यकता से अनभिज्ञ हो सकते हैं। इस प्रकार की अनभिज्ञता शहरी लोगों में भी बहुत असामान्य नहीं है। वे तुरंत पुलिस थाने

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

जाने के बारे में नहीं सोच सकते हैं। एक अन्य संभावना सूचनादाताओं के पुलिस थाने पहुँचने के लिए पर्याप्त परिवहन सुविधाओं के अभाव के कारण हो सकती है। तीसरा, जो काफी सामान्य कारण है, यह है कि मृतक के निकट संबंधियों को अपेक्षित सूचना प्रदान करने के प्रयोजन से पुलिस थाने जाने के लिए मन की एक निश्चित स्तर की शांति या स्वभाव की स्थिरता पुनः प्राप्त करने में कुछ पर्याप्त समय लग सकता है। एक अन्य कारण यह है कि ऐसे व्यक्ति जिन्हें ऐसी सूचना देनी है, स्वयं इतने शारीरिक रूप से असमर्थ हो सकते हैं कि घटना के बारे में कुछ अस्पष्ट सूचना प्राप्त होने पर पुलिस को स्वयं उनके पास पहुँचना पड़ा।

15. हम उन उदाहरणों की कोई संपूर्ण सूची प्रदान नहीं कर रहे हैं जो प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब का कारण बन सकते हैं। हमारा प्रयास यह इंगित करना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब मात्र के आधार पर उसे दूषित मानने की आपराधिक न्यायालयों में की जाने वाली पुरानी मांग को विधिक परिणाम के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। किसी भी मामले में, जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब हो, न्यायालय को उसके कारणों को देखना है और यदि ऐसे कारण किसी विवरण को गढ़ने के किसी प्रयास के कारण नहीं हैं तो प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में मात्र विलंब का कोई परिणाम नहीं निकाला जाएगा। (देखें ज़हूर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [1991 सप्प (1) एससीसी 372 : 1991 एससीसी (क्रि) 678], तारा सिंह बनाम पंजाब राज्य [1991 Supp (1) एससीसी 536 : 1991 एससीसी (क्रि) 710] और जमना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [1994 Supp (1) एससीसी 185 : 1994 एससीसी (क्रि) 348]) तारा सिंह [1991 Supp (1) एससीसी 536 : 1991 एससीसी (क्रि) 710] में न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं: (एससीसी पृष्ठ 541, प्रस्तर 4)

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

4. यह स्थापित विधिक सिद्धांत है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट देने में विलंब अपने आप में अभियोजन के मामले पर संदेह करने का आधार नहीं हो सकता है। भारतीय परिस्थितियों को जैसा वे हैं जानते हुए हम इन ग्रामीणों से घटना के तुरंत बाद पुलिस थाने जाने की अपेक्षा नहीं कर सकते हैं। मानव स्वभाव जैसा है, घटना के साक्षी रहे निकट संबंधियों से पुलिस को रिपोर्ट देने में पूरी तत्परता के साथ यांत्रिक रूप से कार्य करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। कभी-कभी विपत्ति के कारण शोकाकुल होने से उन्हें तुरंत यह ध्यान में नहीं आ सकता है कि उन्हें रिपोर्ट देनी चाहिए। आखिरकार, इन परिस्थितियों में उनके लिए रिपोर्ट देने के लिए पुलिस थाने जाने में कुछ समय लेना स्वाभाविक ही है।”

52. आगे, हम पाते हैं कि हाल ही में माननीय उच्चतम न्यायालय ने हरि प्रसाद उर्फ किशन साहू बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2023 आईएनएससी 986 के मामले में, विषय पर विधि की विवेचना करने के पश्चात, प्राधिकृत रूप से यह निर्णीत किया कि;

“10. निस्संदेह, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब को अपने आप में अभियोजन के मामले के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त आधार नहीं माना जा सकता है, न ही इसे अभियोजन के मामले के लिए घातक माना जा सकता है। न्यायालय को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विलंब के कारणों का पता लगाना होगा। यदि कारण किसी विवरण को गढ़ने के किसी प्रयास के कारण नहीं हैं, केवल विलंब अपने आप में अभियोजन के मामले के लिए घातक नहीं होगा।”

(प्रभाव वर्धित)

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

53. अभिलेख पर आए वर्तमान तथ्यों एवं परिस्थितियों के दृष्टिगत, हम विद्वान अधिवक्ता के तर्क से सहमत होने में असमर्थ हैं। आगे, हम पाते हैं कि उक्त आधार अपीलीय चरण में विलंब से लिया गया है और इस संबंध में विचारण के दौरान अपीलकर्ता द्वारा उनके प्रतिपरीक्षण में साक्षियों से कोई प्रश्न भी नहीं किया गया था। वास्तव में, और अभिलेखों के अनुसार, अपीलकर्ता ने उसे प्रदान किए गए अवसर के बावजूद अभियोजन साक्षी-1 का प्रतिपरीक्षण तक नहीं करना चुना और इस प्रकार उसका अभिसाक्ष्य अप्रतिवादित रहा और इस प्रकार देश में प्रचलित विधि के दृष्टिगत उस पर विश्वास किया जाना है। यह देखा जा सकता है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नाहर सिंह** (उपरोक्त) के मामले में इसी प्रकार के प्रस्ताव पर विचार करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी की है:

“13. यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि अभियोजन साक्षी-1 के कथन के उस भाग का अभियुक्त द्वारा प्रतिपरीक्षण नहीं किया गया था। विलंब के स्पष्टीकरण पर प्रतिपरीक्षण के अभाव में, अभियोजन साक्षी-1 का साक्ष्य अप्रतिवादित रहा और उच्च न्यायालय द्वारा उस पर विश्वास किया जाना चाहिए था। साक्ष्य अधिनियम की धारा 138 विरोधी पक्ष द्वारा साक्ष्य में प्रस्तुत किए गए साक्षी का प्रतिपरीक्षण करने का मूल्यवान अधिकार प्रदान करती है। उस उपबंध का दायरा साक्ष्य अधिनियम की धारा 146 द्वारा किसी साक्षी से प्रश्न किए जाने की अनुमति देकर विस्तृत किया गया है:

(1) उसकी सत्यनिष्ठा की परीक्षा करने के लिए।

(2) यह पता लगाने के लिए कि वह कौन है और जीवन में उसकी क्या स्थिति है, या

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

(3) उसके चरित्र को क्षति पहुँचाकर उसकी विश्वसनीयता को विचलित करने के लिए, यद्यपि ऐसे प्रश्नों का उत्तर उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दोषारोपित करने की प्रवृत्ति रख सकता है या उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी शास्ति या सम्पहरण के लिए उजागर कर सकता है या उजागर करने की प्रवृत्ति रख सकता है।

14. ब्राउन बनाम उन [(1893) 6 द रिपोर्ट्स 67] में लॉर्ड हर्शेल, एल०सी० की प्रायः उद्धृत टिप्पणी उन उपबंधों में अंतर्निहित सिद्धांत को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करती है।

यह इस प्रकार है:

“मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी वाद के समुचित संचालन के लिए, जहाँ यह सुझाव देना आशयित हो कि कोई साक्षी किसी विशेष बिंदु पर सत्य नहीं बोल रहा है, प्रतिपरीक्षा में पूछे गए कुछ प्रश्नों द्वारा उसका ध्यान उस तथ्य की ओर आकृष्ट करना पूर्णतः आवश्यक है, जिससे यह दर्शाया जा सके कि लांछन लगाए जाने का आशय है, और उसके साक्ष्य को लेकर उसे पूर्णतः अप्रतिवादित विषय के रूप में जाने न दिया जाए, और फिर, जब उसके लिए उन परिस्थितियों को, जो यह संकेत करती हैं कि उसके द्वारा बताई गई कहानी पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए, स्पष्ट करना असंभव हो, जबकि यदि ऐसे प्रश्न उससे पूछे गए होते तो संभवतः वह ऐसा करने में सक्षम होता, यह तर्क दिया जाए कि वह विश्वसनीयता के अयोग्य साक्षी है। माननीय न्यायाधीशगण मैंने सदैव यह समझा है कि यदि आप किसी साक्षी की विश्वसनीयता पर आक्षेप करना चाहते हैं, तो जब वह साक्षी-कक्ष में हो, आप उसके लिए उसके समक्ष उपलब्ध किसी भी स्पष्टीकरण को देने का अवसर प्रदान करने के लिए बाध्य हैं; और, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, यह न

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

केवल किसी वाद के संचालन में व्यावसायिक आचरण का नियम है, बल्कि साक्षियों के साथ निष्पक्ष व्यवहार और उचित व्यवहार के लिए आवश्यक है।”

यह पहलू दुर्भाग्यवश उच्च न्यायालय से छूट गया जब उसने इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए कि विलंब के लिए स्पष्टीकरण बिल्कुल भी विश्वसनीय नहीं है। यह कारण, अतः, विश्वसनीय होने से बहुत दूर है।”

54. अतः, हमारे मन में इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब अभियोजन की कहानी के लिए घातक नहीं है और अभिलेख पर सिद्ध किया गया किसी प्रकार का कोई अलंकरण का साक्ष्य नहीं है। विद्वान अधिवक्ता यह स्पष्ट करने में भी विफल रहे हैं कि विलंब से किसी भी प्रकार अपीलकर्ता के प्रति किस प्रकार कोई प्रतिकूलता उत्पन्न हुई है।

55. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अगला बिंदु संबंधी साक्षियों पर पूर्णतः आधारित दोषसिद्धि और प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित स्वतंत्र साक्षियों की परीक्षा न किए जाने से संबंधित है। प्रारंभ में ही, यह समझा जाना चाहिए कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की यह पूर्णतः गलत समझ है कि अपीलकर्ता को केवल संबंधी साक्षी के कथन के आधार पर दोषसिद्ध किया गया है। सर्वप्रथम, अपीलकर्ता को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा साक्षियों की मौखिक गवाही और अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री के दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में अभिलेख पर लाई गई सुसंगत साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया गया था। आगे, इसमें कोई संदेह नहीं कि दोनों अभियोजन साक्षी-1 एवं अभियोजन साक्षी-2 मृतक के संबंधी साक्षी हैं, जो माता और चाचा हैं, किन्तु यह भी समझना होगा कि दोनों घटना के चक्षुदर्शी साक्षी हैं, जो रात्रि में 11 बजे मृतक के घर के अंदर हुई, जिसमें माता सो रही थी और चाचा माता की चीख सुनकर तत्काल समीप से दौड़कर आया। घटना का स्थान और समय अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि कोई यह अपेक्षा नहीं कर सकता कि रात्रि में 11 बजे घर के अंदर कोई स्वतंत्र साक्षी उपस्थित हो। इस

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

न्यायालय के विचार में, विद्वान अधिवक्ता संबंधी साक्षियों और हितबद्ध साक्षियों की संकल्पना को एक और समान के रूप में भूलवश प्रयोग कर रहे हैं, जो तकनीकी रूप से गलत है। संबंधी साक्षी वह व्यक्ति है जिसका पीड़ित से संबंध है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **जर्नेल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2011) 3 एससीसी 521** में यह स्पष्ट किया कि विधि में इस सीमा तक उपधारणा उपलब्ध है कि सामान्यतः कोई संबंधी साक्षी किसी निर्दोष व्यक्ति के विरुद्ध झूठी गवाही नहीं देगा क्योंकि वह वास्तविक दोषियों को दंडित होते हुए देखना चाहता है। यह न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकता कि किसी संबंधी साक्षी के साक्ष्य को केवल इसलिए तत्काल अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वह निकट संबंधी है। इस न्यायालय के अनुसार, साक्षी के संबंध का उपयोग गवाही की वैधता और विश्वसनीयता निर्धारित करने के लिए नहीं किया जा सकता। संबंधी साक्षी की विश्वसनीयता किसी भी पक्ष के साथ उसके संबंध से अप्रभावित रहती है, और एकमात्र सावधानी यह है कि न्यायालय को उसके साक्ष्य की ग्राह्यता का निर्णय करते समय केवल तथ्यों पर निर्भर करते हुए सावधानी से आगे बढ़ना चाहिए।

56. अपीलकर्ताओं ने यह भी तर्क दिया था कि अभियोजन साक्षी-1 एक हितबद्ध साक्षी है और उसकी गवाही विश्वासयोग्य नहीं हो सकती है। इस संबंध में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अभियोजन साक्षी-1, मृतक की माता, यद्यपि पीड़ित से संबंधित थी, किसी भी प्रकार से हितबद्ध साक्षी नहीं कही जा सकती है। जहाँ तक “हितबद्ध साक्षी” और “संबंधी साक्षी” कौन है, इसे उच्चतम न्यायालय द्वारा **मोहम्मद रोज़ाली अली बनाम असम राज्य, (2019) 19 एससीसी 567** के मामले में संक्षेप में स्पष्ट किया गया है, जिसमें यह निर्णीत किया गया कि:

“13. जहाँ तक इस तर्क का संबंध है कि सभी चक्षुदर्शी साक्षी मृतक के निकट संबंधी हैं, यह अब सुस्थापित है कि किसी संबंधित साक्षी को केवल पीड़ित का संबंधी होने के आधार पर “हितबद्ध” साक्षी नहीं कहा जा सकता। इस न्यायालय ने अनेक मामलों में “हितबद्ध” और “संबंधी ” साक्षियों के बीच अंतर

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

को स्पष्ट किया है, यह कहते हुए कि किसी साक्षी को केवल तभी हितबद्ध कहा जा सकता है जब वह किसी वाद के परिणाम से कोई लाभ प्राप्त करता है, जो दांडिक मामले के संदर्भ में यह होगा कि साक्षी की पूर्व शत्रुता या अन्य कारणों से अभियुक्त को दंडित होते देखने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित हो, और इस प्रकार अभियुक्त को झूठा फंसाने का हेतुक हो (उदाहरणार्थ, राजस्थान राज्य बनाम कल्की [राजस्थान राज्य बनाम कल्की, (1981) 2 एससीसी 752 : 1981 एससीसी (क्रि) 593] ; अमित बनाम उत्तर प्रदेश [अमित बनाम उत्तर प्रदेश, (2012) 4 एससीसी 107 : (2012) 2 एससीसी (क्रि) 590] ; और गंगाभवानी बनाम रायपति वेंकट रेड्डी [गंगाभवानी बनाम रायपति वेंकट रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 298 : (2014) 6 एससीसी (क्रि) 182] देखें)। हाल ही में, राजस्थान राज्य बनाम कल्की [राजस्थान राज्य बनाम कल्की, (1981) 2 एससीसी 752 : 1981 एससीसी (क्रि) 593] में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय का संदर्भ देते हुए, निम्नलिखित शब्दों में गणपति बनाम स्टेट ऑफ टी० एन० [गणपति बनाम तमिलनाडु राज्य, (2018) 5 एससीसी 549 : (2018) 2 एससीसी (क्रि) 793] में इस अंतर को हाल ही में दोहराया गया था : (गणपति वाद [गणपति बनाम तमिलनाडु राज्य, (2018) 5 एससीसी 549 : (2018) 2 एससीसी (क्रि) 793], एससीसी पृष्ठ 555, प्रस्तर 14)

“14. “संबंधी” “हितबद्ध” के समतुल्य नहीं है। किसी साक्षी को केवल तभी “हितबद्ध” कहा जा सकता है जब वह किसी वाद के परिणाम से कोई हित धारण करता है; सिविल मामले में डिक्री में, या किसी अभियुक्त को दंडित होते हुए देखने में। ऐसा साक्षी जो स्वाभाविक साक्षी है और किसी मामले की परिस्थितियों में एकमात्र संभावित चक्षुदर्शी साक्षी है, उसे “हितबद्ध” नहीं कहा जा सकता।”

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

14. दांडिक मामलों में, अक्सर ऐसा होता है कि अपराध का साक्षी पीड़ित का निकट संबंधी होता है, जिसकी अपराध के घटनास्थल पर उपस्थिति स्वाभाविक होगी। ऐसे साक्षी के साक्ष्य को साक्षी को हितबद्ध कहकर स्वतः निरस्त नहीं किया जा सकता। वास्तव में, दांडिक मामलों में हितबद्ध साक्षियों के संबंध में आरंभिक कथनों में से एक इस न्यायालय द्वारा दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य [दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1953) 2 एससीसी 36 : 1954 एससीआर 145 : एआईआर 1953 एससी 364 : 1953 क्रि एलजे 1465] में किया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने कहा था: (एआईआर पृष्ठ 366, प्रस्तर 26)

“26. किसी साक्षी को सामान्यतः स्वतंत्र माना जाना चाहिए जब तक कि वह ऐसे स्रोतों से संबंधित न हो जो दूषित होने की संभावना रखते हों और सामान्यतः इसका अर्थ यह है कि जब तक साक्षी के पास अभियुक्त के विरुद्ध शत्रुता जैसे ऐसे कारण न हों जिससे वह उसे झूठा फंसाना चाहता हो। सामान्यतः कोई निकट संबंधी वास्तविक अपराधी को बचाने और किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला अंतिम व्यक्ति होगा।”

15. संबंधी साक्षी के मामले में, न्यायालय उसके साक्ष्य को स्वभावतः दूषित नहीं मान सकता, और केवल यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि साक्ष्य स्वभावतः विश्वसनीय, संभाव्य, सुसंगत और संगत हो। हम इस न्यायालय की जयाबालन बनाम स्टेट (पांडिचेरी संघ क्षेत्र) [जयाबालन बनाम राज्य (यूपांडिचेरी संघ क्षेत्र), (2010) 1 एससीसी 199 : (2010) 2 एससीसी (क्रि) 966] में की गई टिप्पणियों का संदर्भ ले सकते हैं : (एससीसी पृष्ठ 213, प्रस्तर 23)

“23. हमारा सुविचारित मत है कि ऐसे मामलों में जहाँ न्यायालय को हितबद्ध साक्षियों के साक्ष्य से निपटने के लिए कहा जाता है, ऐसे

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

साक्षियों के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण रुढ़िवादी नहीं होना चाहिए। न्यायालय को हितबद्ध साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने और उसे स्वीकार करने में सतर्क रहना चाहिए किन्तु न्यायालय को ऐसे साक्ष्य पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास संगति की तलाश करना होना चाहिए। किसी साक्षी के साक्ष्य को केवल इसलिए नजरअंदाज या बाहर नहीं किया जा सकता क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति के मुख से आता है जो पीड़ित से निकटता से संबंधित है।”

57. दोनों अभियोजन साक्षी¹ एवं अभियोजन साक्षी² संबंधी हो सकते हैं किन्तु किसी भी प्रकार से हितबद्ध साक्षी नहीं हैं। जहाँ तक किसी संबंधी व्यक्ति के साक्ष्यात्मक मूल्य का संबंध है, विधि स्थापित है कि किसी हत्या किए गए व्यक्ति के निकट संबंधी वास्तविक हमलावर को छोड़ने और हमलावर के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को मिथ्या रूप से संलिप्त करने के लिए सर्वाधिक अनिच्छुक होते हैं। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **खुर्शीद अहमद बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य, (2018) 7 एससीसी 429** में, विधि के इस पहलू पर निम्नलिखित शब्दों में न्यायोचित ठहराया है:

“31. विधि में ऐसा कोई स्थापित सिद्धांत नहीं है कि रिश्तेदारों को असत्य साक्षियों के रूप में माना जाए। इसके विपरीत, जब पक्षपात का अभिकथन किया जाता है तो यह दर्शाने के लिए कारण दर्शाया जाना आवश्यक है कि साक्षियों के पास वास्तविक अपराधी को बचाने और अभियुक्त को मिथ्या रूप से फंसाने के कारण थे (देखें *हरबंस कौर बनाम हरियाणा राज्य*)”

58. उपर्युक्त बाध्यकारी दृष्टांत को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अभियोजन साक्षी-1 एवं अभियोजन साक्षी-2, दोनों असहाय, ग्रामीण, अशिक्षित ग्रामीण होने के नाते, अपनी आँखों के सामने अपीलकर्ता द्वारा 19 वर्ष की एक युवती पर घातक

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

रूप से किए गए हमले से हुई हत्या के आघात और त्रासदी से ग्रस्त होने के बावजूद, गहन प्रतिपरीक्षण और न्यायिक संवीक्षा में टिके रहे हैं। यद्यपि अभियोजन साक्षी-1 का प्रतिपरीक्षण नहीं किया गया था, लेकिन उसका बयान उसके द्वारा दर्ज कराई गई शिकायत के अनुरूप है। अभियोजन साक्षी-2 प्रतिपरीक्षण की कसौटी पर खरा उतरा है और ऐसे उत्तर दिए हैं जो स्वाभाविक थे और टालमटोल वाले नहीं थे, उक्त साक्षी की सत्यता का संकेत देते हैं। अतः, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि अभियोजन साक्षी-1 एवं अभियोजन साक्षी-2 का साक्ष्य विश्वसनीय एवं भरोसेमंद है। उनका साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य तथा विवेचक और अन्य आधिकारिक साक्षियों के साक्ष्य से पुष्ट होता है।

59. जहाँ तक प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित स्वतंत्र साक्षियों अर्थात् लुटावन, इंदल और टुरी को प्रस्तुत न किए जाने का संबंध है, यदि किसी तथ्य को प्रत्यक्षदर्शी के विश्वसनीय एवं भरोसेमंद साक्ष्य द्वारा सिद्ध कर दिया गया है, तो उस तथ्य के समर्थन में किसी अन्य साक्षी का परीक्षण किया जाना कोई विधिक आवश्यकता नहीं है। ऐसा कोई विधि नहीं है कि किसी प्रत्यक्षदर्शी की साक्ष्य पर तब तक विश्वास नहीं किया जा सकता जब तक कि किसी स्वतंत्र साक्षी द्वारा उसकी पुष्टि न की जाए। पुष्टि सतर्कता का नियम है और अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। यह स्थापित है कि यदि एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी की साक्ष्य विश्वास उत्पन्न करती है, उसके साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है। यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी की साक्ष्य स्पष्ट, सुसंगत और विश्वसनीय है इस आधार पर ऐसी साक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता कि किसी स्वतंत्र साक्षी द्वारा उसकी पुष्टि नहीं की गई है। साक्ष्य की मात्रा नहीं बल्कि उसकी गुणवत्ता मायने रखती है। **गुलाम सरबर बनाम बिहार राज्य, 2014 (3) एससीसी 401** के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि:

“साक्षियों के साक्ष्य के अभिमूल्यन के मामले में, साक्षियों की संख्या नहीं बल्कि

उनके साक्ष्य की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है, क्योंकि साक्ष्य विधि के अंतर्गत किसी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

तथ्य को सिद्ध/असिद्ध करने के लिए किसी विशेष संख्या में साक्षियों का परीक्षण किया जाना आवश्यक नहीं है। यह समय-सम्मानित सिद्धांत है कि साक्ष्य को तौला जाना चाहिए, गिना नहीं जाना चाहिए। कसौटी यह है कि क्या साक्ष्य में सत्यता की झलक है, सुसंगत, विश्वसनीय और भरोसेमंद है अथवा अन्यथा। विधिक व्यवस्था ने साक्षियों की बहुलता या अनेकता के बजाय प्रत्येक साक्षी द्वारा प्रदान किए गए मूल्य पर जोर दिया है। यह गुणवत्ता है न कि मात्रा, जो साक्ष्य की पर्याप्तता निर्धारित करती है, जैसा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 में उपबंधित किया गया है। यहाँ तक कि प्रोबेट मामलों में भी, जहाँ विधि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी के परीक्षण की अपेक्षा करती है, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिक साक्षियों को प्रस्तुत करने का कोई महत्व नहीं है। अतः, यदि एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी की साक्ष्य विश्वास उत्पन्न करती है, उसके साक्ष्य के आधार पर भी दोषसिद्धि की जा सकती है। (देखें वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य [एआईआर 1957 एससी 614 : 1957 क्रि एलजे 1000], कुंजू बनाम तमिलनाडु राज्य [(2008) 2 एससीसी 151 : (2008) 1 एससीसी (क्रि) 331], बिपिन कुमार मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(2010) 12 एससीसी 91 : (2011) 2 एससीसी (क्रि) 150 : एआईआर 2010 एससी 3638], महेश बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2011) 9 एससीसी 626 : (2011) 3 एससीसी (क्रि) 783], पृथ्वीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य [(2012) 1 एससीसी 10 : (2012) 1 एससीसी (क्रि) 1] और किशन चंद बनाम हरियाणा राज्य [(2013) 2 एससीसी 502 : (2013) 2 एससीसी (क्रि) 807 : जेटी (2013) 1 एससी 222])"

60. उपर्युक्त उल्लिखित तथ्यों और मामले के विधि सिद्धांत से यह स्पष्ट है कि यदि एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी की साक्ष्य विश्वास उत्पन्न करती है, तो उसके साक्ष्य के आधार पर भी दोषसिद्धि की जा सकती है। विधिक व्यवस्था ने साक्षियों की बहुलता या अनेकता के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

बजाय प्रत्येक साक्षी द्वारा प्रदान किए गए महत्व पर जोर दिया है। उपर्युक्त के दृष्टिगत, विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि लुटावन, इंदल और टुरी का परीक्षण नहीं किया गया और यह अभियोजन वाद के लिए घातक है, में कोई बल नहीं है और इस आधार पर दोषसिद्धि को अपास्त नहीं किया जा सकता कि अभियोजन के मामले का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र साक्षी नहीं है।

61. विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय को चुनौती देने का अगला आधार, जैसा कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क से स्पष्ट यह है कि अपराध कारित करने का कोई हेतु नहीं है। इस न्यायालय ने पाया है कि अभियोजन साक्षी¹ एवं अभियोजन साक्षी² ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि यह अपीलकर्ता का संदेह था कि मृतका और अभियोजन साक्षी¹ ने अपीलकर्ता की पत्नी को उसके वैवाहिक घर से उसके मायके के घर स्थानांतरित करवा दिया था। अपीलकर्ता ने उक्त तथ्य के लिए जिम्मेदार ठहराया और उस दुर्भाग्यपूर्ण रात में एक ओर मृतका, अभियोजन साक्षी¹ और दूसरी ओर अपीलकर्ता के बीच झगड़ा हुआ था। आगे, यह समझा जाना चाहिए कि हत्या के मामले में हेतु का प्रमाण आवश्यक शर्त नहीं है, जो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के आधार पर सिद्ध किया गया है। हालाँकि, पूर्णतः परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले में, हेतु महत्व रखता है और दोषसिद्धि करने वाली परिस्थितियों की श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण संपुष्टिकारी कड़ी प्रदान करेगा। इस न्यायालय के अनुसार, अभिलेख पर प्रत्यक्ष प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य होने पर हेतु महत्वहीन हो जाता है। उच्चतम न्यायालय ने **चंदन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)**, (2024) 6 एससीसी 799 के मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“बचाव पक्ष का यह तर्क कि अभियोजन अभियुक्त के इस जघन्य कृत्य को कारित करने के किसी हेतु को स्थापित करने में सक्षम नहीं रहा है, वास्तव में सही है, लेकिन चूँकि यह प्रत्यक्षदर्शी का मामला है जहाँ प्रत्यक्षदर्शी को अविश्वसनीय ठहराने के लिए कुछ भी नहीं है, स्वयं हेतु की प्रासंगिकता बहुत

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

कम है। इस पहलू पर कुछ प्रमुख मामलों का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जो निम्नानुसार हैं:

शिवाजी जेनु मोहिते बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1973 एससी 55 में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आपराधिक न्यायशास्त्र में यह सुस्थापित सिद्धांत है कि जब प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य न्यायालय का विश्वास उत्पन्न करता है, तो अभियोजन के लिए हेतु स्थापित करना आवश्यक नहीं है। हेतु का मात्र अभाव किसी विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी की साक्ष्य को प्रभावित नहीं करेगा। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में हेतु विचारणीय एक महत्वपूर्ण कारक है। लेकिन जब प्रत्यक्षदर्शी हो, हेतु महत्वपूर्ण नहीं है।

“यदि अभियोजन किसी प्रबल उद्देश्य का पता लगाने में सक्षम नहीं है, इससे विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सिद्ध हुए किसी साक्षी की विश्वसनीयता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ सकता। उद्देश्य के संबंध में साक्ष्य निस्संदेह पूर्णतः परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर मामलों में बहुत दूर तक जाएगा। ऐसा साक्ष्य ऐसे मामले में परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला की कड़ियों में से एक होगा। लेकिन विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी साक्षी वाले मामलों में ऐसा नहीं होगा, यद्यपि ऐसे मामलों में भी यदि कोई उद्देश्य समुचित रूप से सिद्ध हो जाता है, ऐसा प्रमाण अभियोजन के मामले को सुदृढ़ करेगा और न्यायालय को अपने अंतिम निष्कर्ष में दृढ़ करेगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि उद्देश्य स्थापित नहीं होता है प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य अविश्वसनीय हो जाता है” यह सिद्धांत कि जब प्रत्यक्ष साक्ष्य अपराध को स्थापित करता है तब उद्देश्य का अभाव या अनुपस्थिति अप्रासंगिक है, इस न्यायालय द्वारा बीकाउ पांडे बनाम बिहार राज्य,

(2003) 12 एससीसी 616; राजगोपाल बनाम मुथुपांडी, (2017) 11

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

एससीसी 120; योगेश सिंह बनाम महाबीर सिंह, (2017) 11 एससीसी

195 में पुनः प्रतिपादित किया गया है।

62. अतः, हम निर्णीत करते हैं कि पूर्णतः परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामलों में उद्देश्य एक आवश्यक कारक हो सकता है, तथापि उन मामलों में उद्देश्य महत्वहीन हो जाता है जिनमें यह प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के वृत्तांत पर आधारित है, जैसा कि यहाँ वर्तमान मामला है।

63. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अगला आधार प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के वृत्तांत और चिकित्सीय साक्ष्य में कथित विरोधाभास और विसंगति है। विद्वान अधिवक्ता का तर्क रहा है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, अर्थात् अभियोजन साक्षी-1 ने अपने बयान में कहा है कि चाकू के 5-6 वार किए गए थे, जबकि शव-परीक्षा आख्या में कहा गया है कि केवल तीन चोटें थीं। विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार रूप से तर्क दिया कि यह विसंगति घातक होने के कारण, अपीलकर्ता दोषमुक्ति का हकदार है। सर्वप्रथम, यह समझा जाना चाहिए कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा वर्णित घटना रात्रि 11 बजे एक गांव में हुई है, जहां लोग सामान्यतः अर्धनिद्रा में होते हैं और साक्षी एक ग्रामीण है। उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, जब हम उक्त विसंगति की जांच करते हैं, यह मामूली विरोधाभास प्रतीत होता है, जो विवाद की जड़ तक नहीं जाता है। हमारे अनुसार, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के कथन और शव-परीक्षा आख्या के बीच उक्त मामूली विरोधाभास से अपीलकर्ता की दोषिता की मूल आधारशिला किसी भी प्रकार से विचलित नहीं होती है। यह भी समझा जाना चाहिए कि उक्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों को उक्त हिंसक घटनाओं के दौरान तीव्र आघात से गुजरना पड़ा था, जिसके कारण विशिष्ट विवरणों के उनके स्मरण में मामूली त्रुटियां हो सकती थीं। इस मामले में, प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य महत्वपूर्ण तथ्यों पर सुसंगत था: घटनास्थल पर अभियुक्त की उपस्थिति, हमले में उसकी संलिप्तता, और पीड़ित पर चाकू से हमला किया जाना। उसका साक्ष्य अक्षुण्ण रहा और अन्य साक्ष्य द्वारा समर्थित था। उच्चतम न्यायालय द्वारा लगातार यह प्रतिपादित किया गया कि एक बार प्रत्यक्षदर्शी का कोई कथन हो और वह

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

न्यायालय का विश्वास उत्पन्न करता हो, यह अभियुक्त के दोष को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होगा। माननीय उच्चतम न्यायालय के पृथ्वीराज जयंतिभाई वनोल बनाम दिनेश दयाभाई वाला एवं अन्य, (2022) 18 एससीसी 683 के मामले में दिए गए निर्णय का लाभप्रद संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया था कि:

“प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को सर्वोत्तम साक्ष्य माना जाता है जब तक उस पर संदेह करने के कारण न हों। अभियोजन साक्षी-2 और अभियोजन साक्षी-10 का साक्ष्य असंदिग्ध है। केवल ऐसे मामले में, जहां चिकित्सीय साक्ष्य और मौखिक साक्ष्य के बीच घोर विरोधाभास हो, और चिकित्सीय साक्ष्य प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को असंभाव्य बनाता हो और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के सत्य होने की सभी संभावनाओं को निरस्त करता हो, प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य पर अविश्वास किया जा सकता है।”

(प्रभाव वर्धित)

64. अतः, प्रत्यक्षदर्शी द्वारा प्रस्तुत किए गए कथन के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है और चिकित्सीय साक्ष्य पर प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के पुष्टीकरण के प्रयोजन से ही विचार किया जाना चाहिए। यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि साक्ष्य में मामूली विरोधाभास या असंगतियां आवश्यक रूप से उसे अविश्वसनीय नहीं बनाती हैं, जब तक कि मूल तथ्य अक्षुण्ण बने रहें। न्यायालय की भूमिका साक्ष्य पर उसकी समग्रता में विचार करके सत्य का विवेचन करना है न कि एक संपूर्ण कथन को अविश्वसनीय बनाने के लिए व्यक्तिगत असंगतियों को अलग करके देखना। इस न्यायालय के अनुसार, जब प्रत्यक्ष साक्ष्य, जैसे कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य, विश्वसनीय और भरोसेमंद हो, तो उस पर समुचित महत्व दिया जाना चाहिए जब तक उस पर अविश्वास करने के लिए बाध्यकारी कारण न हों। इस मामले में, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी स्वतंत्र थे और अभियुक्त को झूठा फंसाने का उनका कोई उद्देश्य नहीं था। उनका साक्ष्य मामले की समग्र परिस्थितियों के अनुरूप

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

था और चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा काफी हद तक पुष्ट किया गया था और अतः उसमें मात्र मामूली विसंगति अभियोजन की कहानी के लिए घातक नहीं हो सकती।

65. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अगला आधार चाकू (अपराध का हथियार) की बरामदगी के संदिग्ध होने से संबंधित है। हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से पाते हैं कि बरामदगी अपीलकर्ता के बताए अनुसार उसके घर से लगे छप्पर/छत से की गई है और क-15 के रूप में प्रदर्शित की गई है। उक्त बरामदगी के साक्षी अभियोजन साक्षी-8 (राम नरेश) हैं, जिन्होंने उक्त बरामदगी का समर्थन किया और गहन प्रतिपरीक्षा में अक्षुण्ण रहे। अपीलकर्ता द्वारा लिया गया एकमात्र आधार यह है कि चाकू एक खुले स्थान से बरामद किया गया था। इस संबंध में, स्वयं साक्ष्यों में यह उपलब्ध है कि चाकू घटना के निकट और एफआईआर दर्ज किए जाने के मात्र एक दिन बाद उसके घर से लगे छप्पर/छत से बरामद किया गया था, जिसे इस अर्थ में खुला स्थान नहीं कहा जा सकता कि वह आम जनता के लिए सुलभ हो। छप्पर/छत पूर्णतः अपीलकर्ता के नियंत्रण में था और अपीलकर्ता के विरुद्ध पाए गए अन्य दोषारोपणकारी सामग्री के साथ पड़े जाने पर उक्त स्थान पर संदेह नहीं किया जा सकता।

66. वर्तमान अपील को स्वीकार किए जाने के लिए अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत अंतिम आधार यह है कि टॉर्च की कोई बरामदगी नहीं हुई है, जो प्रकाश का एकमात्र स्रोत है, जिससे अभियुक्त/अपीलकर्ता की पहचान संदिग्ध हो जाती है। हमारा मत है कि इसी प्रकार का समान आधार अपीलकर्ता द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष लिया गया था। हम पाते हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय ने साक्षी के मौखिक साक्ष्य के साथ-साथ अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् सकारण निष्कर्ष दिया है, जिसे यह न्यायालय वर्तमान निर्णय में समावेश के प्रयोजन से उद्धृत करना चाहता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णीत किया:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

“33. बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ता की तरफ से तर्क प्रस्तुत किया गया है कि कथित घटना रात 11 बजे की है, घटनास्थल पर समुचित प्रकाश न होने तथा अभियोजन द्वारा घटनास्थल पर कथित लालटेन का प्रकाश होने के सम्बन्ध में साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है, अतः अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। उक्त तर्क के विरुद्ध अभियोजन पक्ष की तरफ से तर्क प्रस्तुत किया गया है कि घटनास्थल पर लालटेन जल रही थी तथा घटनास्थल पर अभियोजन साक्षी संख्या-2 रामसजीवन टार्च लेकर गया था जिनकी रोशनी में उसने अभियुक्त को देखा व पहचाना तथा पकड़ने का प्रयास किया। अभियोजन साक्षी संख्या-2 रामसजीवन ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि अभियुक्त पुत्तन का घर उसके से दो तीन मकान बाद है। वादिनी मुकदमा अभियोजन साक्षी संख्या-1 श्रीमती तकदीरा के मुख्य बयान के अनुसार उसके शोर पर तत्काल सजीवन व लुटावन आ गये थे, जो उसके घर के सामने ही रहते हैं। अभियुक्त पड़ोसी है जिसकी पहचान उक्त प्रकाश में की जा सकती थी। अभियोजन की तरफ से अपने तर्कों के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत न्याय दृष्टांत 2001 सुप्रीम कोर्ट केसेस (क्रि) 1546 राम गुलाम चौधरी एवं अन्य-बनाम-बिहार राज्य प्रस्तुत किया गया है, के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिमत व्यक्त किया गया है कि ऐसे व्यक्ति जिनसे साक्षीगण पूर्व से परिचित रहे हों, उनकी आवाज, चलने की चाल आदि से उनकी पहचान अंधेरे में भी की जानी सम्भाव्य होती है। ऐसे साक्षीगण जो अभियुक्त को पूर्व से जान व पहचान रहे हों, उनके द्वारा अंधेरे में भी पहचानने में कोई असुविधा नहीं होती है। उक्त साक्षियों के साक्ष्य को अविश्वसनीय माने जाने का युक्तिसंगत आधार नहीं होता है। प्रस्तुत मामले में वादिनी मुकदमा श्रीमती तकदीरा व साक्षी रामसजीवन का घर आमने सामने है तथा अभियुक्त पुत्तन का घर साक्षी रामसजीवन के घर के दो तीन मकान बाद है। अर्थात् वादिनी मुकदमा के मकान के निकट ही अभियुक्त पुत्तन का मकान

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

है, अतः उपरोक्त विवेचन उपरांत न्यायालय इस मत की है कि बचाव पक्ष के उक्त तर्क का लाभ प्राप्त नहीं होता है।

34-बचाव पक्ष द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया कि अभियोजन साक्षी संख्या-2 रामसजीवन द्वारा जिस टार्च से घटना देखी गयी है, उसे विवेचक द्वारा कब्जे में नहीं लिया गया है न ही उसकी कोई फर्द तैयार की गयी है, इस प्रकार घटनास्थल पर टार्च की रोशनी में अभियुक्त को देखने का कथन विश्वसनीय नहीं है। विवेचक द्वारा विवेचना त्रुटिपूर्ण रूप से की गयी है अतः अभियुक्त इसका लाभ प्राप्त करने का अधिकारी है।

इस संदर्भ में अभियोजन साक्षी संख्या-2 रामसजीवन का मुख्य बयान महत्वपूर्ण हो जाता है। अभियोजन साक्षी संख्या-2 रामसजीवन ने बचाव पक्ष द्वारा जिरह किये जाने पर कथन किया है कि-

"जिस टार्च से मैंने घटना देखी थी, वह टार्च मेरे घर पर है, दरोगा जी द्वारा वह टार्च सीलमोहर नहीं की गयी थी, मैंने वह टार्च दरोगा जी को नहीं दिखाया था और न ही टार्च के सम्बन्ध में दरोगा जी को बताया था, दरोगा जी ने कैसे लिख लिया मुझे नहीं पता, मैंने टार्च वाली बात दरोगा जी को बयान में नहीं बतायी है फिर कहा कि दरोगा जी के पूछने पर मैंने टार्च के बारे में दरोगा जी को बताया था।"

35-विवेचक द्वारा यदि कोई त्रुटि की गयी है जो इस स्तर की नहीं है कि जिससे अभियोजन कथानक झूठा व बनावटी साबित हो तथा तथ्य के अभियोजन साक्षियों का कथन अस्वाभाविक, असहज व संदिग्ध प्रतीत हो तब तक विवेचना की त्रुटि के आधार पर अभियोजन कथानक दूषित नहीं हो जाता है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत न्यायवृष्टान्त स्टेट आफ

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

कर्नाटका बनाम के० यरप्पा रेड्डी ए० आई० आर० 2000 सुप्रीम कोर्ट 185 के वाद में तथा माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा न्यायदृष्टान्त गोपाल बनाम स्टेट आफ यूपी 1999 (1) जे०आई० सी०, 858 इलाहाबाद में अवधारित किया गया है कि विवेचना आपराधिक विचारण में एक मात्र सम्वीक्षा का विषय नहीं है यदि विवेचना अविधिक हो तथा संदिग्ध हो, परन्तु शेष साक्षियों के साक्ष्य की सम्वीक्षा से अभियोजन कथानक साबित होता है तो विवेचनाधिकारी के गलती के कारण अभियोजन कथानक दूषित नहीं हो जाता है। हेमा बनाम स्टेट [2013 ए०सी०सी० 1 (एस०सी०)] के वाद में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से अवधारित किया गया है कि विवेचना में आयी कमी मात्र के आधार पर अभियोजन कथानक दूषित नहीं होता है, यदि अन्य अभियोजन साक्षी विश्वसनीय व सन्देह रहित हैं तो अभियोजन साक्ष्य पर विश्वास किया जा सकता है। क्रिमिनल अपील संख्या 1482 वर्ष 2013 योगेश सिंह बनाम महाबीर सिंह एवं अन्य, निर्णीत दिनांक 20 अक्टूबर, 2016 एवं सी० मुनिअप्पन एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, (2010) 9 एससीसी 567, के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिमत व्यक्त किया गया है-

“किसी मामले में अत्यधिक दोषपूर्ण अन्वेषण हो सकता है। तथापि, यह जांचा जाना है कि क्या विवेचना अधिकारी द्वारा कोई चूक हुई है और क्या ऐसी चूक के कारण अभियुक्त को कोई लाभ दिया जाना चाहिए। इस विषय पर विधि सुस्थापित है कि अन्वेषण में दोष मात्र अपने आप में दोषमुक्ति का आधार नहीं हो सकता। यदि ऐसी सुनियोजित या लापरवाह अन्वेषणों अथवा सतही अन्वेषण द्वारा की गई चूकों या त्रुटियों को प्रधानता दी जाती है, तो आपराधिक न्याय प्रशासन में लोगों का विश्वास और भरोसा क्षीण हो जाएगा। जहाँ

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

अन्वेषण अभिकरण की ओर से लापरवाही अथवा चूक आदि हुई है। जिसके परिणामस्वरूप दोषपूर्ण अन्वेषण हुआ है, न्यायालय का यह विधिक दायित्व है कि वह ऐसी चूकों से परे अभियोजन साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच करे, ताकि यह पता लगाया जा सके कि उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं और वह किस सीमा तक विश्वसनीय है तथा क्या ऐसी चूकों ने सत्य का पता लगाने के उद्देश्य को प्रभावित किया है।

अतः, आपराधिक विचारण में अन्वेषण न्यायिक जांच का एकमात्र क्षेत्र नहीं है। मामले में विचारण का निष्कर्ष केवल अन्वेषण की सत्यनिष्ठा पर निर्भर होने की अनुमति नहीं दी जा सकती।”

उपरोक्त विवेचना तथा निर्णयज विधियों के आलोक में इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुये कि मामला प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित तथा समर्थित है अतः बचाव पक्ष को उक्त तर्क का मामले में कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है।”

67. वर्तमान मामले में, हम संतुष्ट हैं कि अभिलेख से स्पष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, अभियोजन अपने मामले को सभी युक्तियुक्त संदेहों से परे स्थापित करने में सक्षम रहा है कि अपीलकर्ता मृतक की मृत्यु के लिए उत्तरदायी था जिसके लिए उसे दोषसिद्ध किया गया था। हम विचारण न्यायालय द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में ऐसी कोई स्पष्ट अवैधता या विकृति नहीं पाते हैं जिससे अपीलकर्ता को न्याय की कोई गंभीर विफलता हुई हो। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर भिन्न हैं।

68. तथापि, हमारे इस निष्कर्ष के बावजूद कि अपीलकर्ताओं ने मृतक पर चाकू से हमला किया जिससे मृतक की मृत्यु हुई, हमने यह अभिलक्षित किया है कि मृतक की

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

मृत्यु पूर्वनियोजित नहीं थी। यह साक्ष्य के माध्यम से स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं किया गया है और न ही विद्वान विचारण न्यायालय के तर्क से यह स्थापित होता है कि यह पूर्वनियोजित था और मृतक की हत्या करने के आशय से हमला पूर्व-नियोजित था। तथ्य यह है कि सूचनाकर्ता और उसकी पुत्री (मृतका) का अपीलकर्ता, जो एक निकट संबंधी है, के साथ कुछ विवाद के कारण, अपीलकर्ता ने गंभीर और अचानक प्रकोपन में तथा क्षणिक आवेश और क्रोध में, मृतका के एक महत्वपूर्ण अंग पर चाकू से वार किया, जो घातक चोट कारित करने के लिए पर्याप्त था और संभवतः मृत्यु भी कारित हुई।

69. तथापि, यह युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित है कि अपीलकर्ता ने यह पूर्णतः जानते हुए मृतक की मृत्यु कारित की कि अपीलकर्ता द्वारा कारित शारीरिक चोटें मृत्यु कारित करने की संभावना रखती थीं क्योंकि अपीलकर्ता चाकू से सशस्त्र था, हम अपीलकर्ताओं की धारा 302 भादंसा के अधीन दोषसिद्धि को धारा 304 के भाग 1 में परिवर्तित करने के इच्छुक हैं। तदनुसार, हम अपीलकर्ताओं को धारा 304 भादंसा के भाग 1 के अधीन दोषसिद्ध करते हैं। इस पहलू पर उच्चतम न्यायालय द्वारा मेजर सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, [2022] 6 एस०सी०आर० 800 के मामले में विचार किया गया है, और प्रासंगिक प्रस्तर 12 से 18 हैं, जिन्हें निम्नलिखित रूप में प्रतिलिपि किया जा रहा है:-

“12. अभियोजन ने स्थापित किया है कि मृतक की मृत्यु मानववधात्मक थी। शव-परीक्षा आख्या के अनुसार, मृतक को आठ चोटें आई थीं। डॉ० अमन कपूर (अभियोजन साक्षी 2) ने आख्या में कहा है कि मुख्य चोट सिर पर थी और दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों सुखराज सिंह (अभियोजन साक्षी 3) और चरनजीत सिंह (अभियोजन साक्षी 4) ने दावा किया है कि अपीलकर्ता ने उनके पिता के सिर पर ‘बही’ से प्रहार किया था। ‘बही’ की बरामदगी, अर्थात् मृतक को घातक चोट कारित करने के लिए प्रयुक्त हथियार की बरामदगी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

पुलिस द्वारा अपीलकर्ता द्वारा छिपाने के स्थान के संबंध में स्वीकारोक्ति करने के पश्चात् ही की गई थी।

13. अतः, हम संतुष्ट हैं कि अभियोजन ने युक्तियुक्त संदेह से परे, घटना को यथारूप स्थापित किया है। अभियुक्त द्वारा कारित चोट के कारण मृतक की मृत्यु हुई। एकमात्र प्रश्न जिस पर हमारे द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है, वह यह है कि क्या मामला धारा 302 भादंसा के अधीन दंडनीय हत्या की कोटि में आने वाले आपराधिक मानववध की परिधि में आता है जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत किया गया है या यह धारा 304 भादंसा के अधीन दंडनीय हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध का मामला था, जैसा कि अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा वैकल्पिक रूप से अभिवचन किया गया है।

14. कोई अपराध हत्या की कोटि में आने वाला आपराधिक मानववध है या हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानववध है, इसके बीच अंतर पर इस न्यायालय द्वारा हाल ही में **मोहम्मद रफीक बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 10 एससीसी 706** के मामले में, इस बिंदु पर पूर्ववर्ती निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, विचार किया गया है। न्यायालय ने निर्णीत किया कि यद्यपि यह विभेद करना कठिन है कि अपराध के लिए दंड भादंसा की धारा 302 या धारा 304 के अधीन आएगा, दोनों अपराधों में अंतर्निहित आशय और ज्ञान की मात्रा में सूक्ष्म अंतर है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे प्रस्तुत किए गए हैं:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

"प्रस्तर 11 इस प्रश्न पर कि क्या किसी मामले में कोई मानववध भादंस की धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या है, या किसी भी प्रकार का आपराधिक मानववध है, जो भादंस की धारा 304 के अधीन दंडनीय है, इस देश के न्यायालयों का ध्यान भादंस के अधिनियमन के बाद से डेढ़ शताब्दी से अधिक समय से लगा हुआ है; इस पहलू पर विधि-निर्णयों का विपुल भंडार विद्यमान है, जिसमें इस न्यायालय के संभवतः सैकड़ों निर्णय सम्मिलित हैं। आपराधिक मानववध के संबंध में कई स्थानों पर "संभावित" शब्द का प्रयोग अनिश्चितता के तत्व को उजागर करता है कि अभियुक्त के कृत्य से व्यक्ति की मृत्यु हुई हो सकती है या नहीं भी हुई हो सकती है। भादंस की धारा 300, जो हत्या को परिभाषित करती है, तथापि "संभावित" शब्द के प्रयोग से परहेज करती है, जो अभियुक्त की ओर से छोड़ी गई संदिग्धता की अनुपस्थिति को प्रकट करता है। अभियुक्त को निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि उसके कृत्य से निश्चित रूप से मृत्यु कारित होगी। आपराधिक मानववध और हत्या के बीच विभेद करना प्रायः कठिन होता है क्योंकि दोनों में मृत्यु कारित होना सम्मिलित है। फिर भी, दोनों अपराधों में अंतर्निहित आशय और ज्ञान में सूक्ष्म अंतर है। यह अंतर कृत्य की मात्रा में निहित है। दोनों अपराधों में आशय और ज्ञान की मात्रा में बहुत व्यापक अंतर है।

प्रस्तर 12- आंध्र प्रदेश राज्य बनाम रायवरापु पुन्नय्या एवं अन्य के मामले में निर्णय में दोनों उपबंधों के बीच महत्वपूर्ण अंतर और उनके भिन्न, किंतु सूक्ष्म अंतर को अभिलक्षित किया गया है। न्यायालय ने प्रासंगिक रूप से इंगित किया कि:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

12. दंड संहिता की योजना में, "आपराधिक मानववध" जाति है और हत्या उसकी प्रजाति है। सभी हत्याएं "आपराधिक मानववध" हैं किंतु इसके विपरीत नहीं। सामान्यतः कहा जाए तो, "हत्या की विशेष विशेषताओं" से रहित "आपराधिक मानववध", "हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानववध" है। इस सामान्य अपराध की गंभीरता के अनुपात में दंड निर्धारित करने के प्रयोजन से, संहिता व्यावहारिक रूप से आपराधिक मानववध की तीन श्रेणियों को मान्यता देती है। पहला, जिसे "प्रथम श्रेणी का आपराधिक मानववध" कहा जा सकता है। यह आपराधिक मानववध का सबसे गंभीर रूप है, जिसे धारा 300 में "हत्या" के रूप में परिभाषित किया गया है। दूसरे को "द्वितीय श्रेणी का आपराधिक मानववध" कहा जा सकता है। यह धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय है। तत्पश्चात्, "तृतीय श्रेणी का आपराधिक मानववध" है। यह आपराधिक मानववध का निम्नतम प्रकार है और इसके लिए उपबंधित दंड भी तीनों श्रेणियों के लिए उपबंधित दंडों में निम्नतम है। इस श्रेणी का आपराधिक मानववध धारा 304 के द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय है।

13. "हत्या" और "हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध" के बीच शैक्षणिक अंतर ने एक शताब्दी से अधिक समय से न्यायालयों को उलझन में डाला है। भ्रम तब उत्पन्न होता है, यदि न्यायालय इन धाराओं में विधानमंडल द्वारा प्रयुक्त शब्दों के वास्तविक क्षेत्र और अर्थ से दृष्टि खोकर स्वयं को सूक्ष्म अमूर्तताओं में उलझने देते हैं। इन उपबंधों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए

सबसे सुरक्षित दृष्टिकोण यह प्रतीत होता है कि धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में प्रयुक्त मुख्य शब्दों को ध्यान में रखा जाए;

प्रस्तर 13 यह निर्धारित करने में कि कोई कृत्य हत्या या हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध के रूप में दंडनीय है, न्यायालयों को जिन बातों पर विचार करना चाहिए, उन्हें पुलिचेरला नागराजू उर्फ नागराजा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में स्पष्ट किया गया था। इस न्यायालय ने अभिलक्षित किया कि:

"29. अतः, न्यायालय को आशय के निर्णायक प्रश्न का निर्णय सावधानी और सतर्कता के साथ करने के लिए अग्रसर होना चाहिए, क्योंकि इससे यह निर्धारित होगा कि मामला धारा 302 या 304 भाग I या 304 भाग II के अंतर्गत आता है। कई तुच्छ या महत्वहीन मामले जैसे किसी फल को तोड़ना, मवेशियों का भटक जाना, बच्चों का झगड़ा, कोई अशिष्ट शब्द कहना या यहां तक कि आपत्तिजनक दृष्टि डालना, विवाद और समूह संघर्ष का कारण बन सकते हैं, जिनका परिणाम मृत्यु में हो सकता है। ऐसे मामलों में प्रतिशोध, लालच, ईर्ष्या या संदेह जैसे सामान्य उद्देश्य पूर्णतः अनुपस्थित हो सकते हैं। कोई आशय नहीं हो सकता है। कोई पूर्वनियोजन नहीं हो सकता है। वास्तव में, आपराधिकता भी नहीं हो सकती है। दूसरे छोर पर, हत्या के ऐसे मामले हो सकते हैं जहां अभियुक्त यह मामला प्रस्तुत करने का प्रयास करके हत्या के लिए दंड से बचने का प्रयास करता है कि मृत्यु कारित करने का कोई आशय नहीं था। न्यायालयों का यह सुनिश्चित करना है कि धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या के मामलों को धारा 304 भाग I/II के अधीन दंडनीय अपराधों में परिवर्तित न किया जाए, अथवा हत्या की

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध के मामलों को धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या के रूप में न माना जाए। मृत्यु कारित करने का आशय सामान्यतः निम्नलिखित कुछ या कई परिस्थितियों के संयोजन से, अन्य बातों के साथ-साथ, ज्ञात किया जा सकता है;

(i) प्रयुक्त हथियार की प्रकृति; (ii) क्या हथियार अभियुक्त द्वारा साथ लाया गया था या घटनास्थल से उठाया गया था; (iii) क्या प्रहार शरीर के किसी महत्वपूर्ण अंग पर लक्षित है; (iv) चोट कारित करने में प्रयुक्त बल की मात्रा; (v) क्या कृत्य अचानक हुए झगड़े या अचानक हुए संघर्ष या खुले संघर्ष के दौरान हुआ था; (vi) क्या घटना संयोगवश हुई या क्या कोई पूर्वनियोजन था; मृतक एक अपरिचित व्यक्ति था; (viii) क्या कोई गंभीर और अचानक प्रकोपन था और यदि ऐसा था, तो ऐसे प्रकोपन का कारण; (ix) क्या यह आवेश की तीव्रता में था; (x) क्या चोट कारित करने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ उठाया है या क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य किया है; (xi) क्या अभियुक्त ने एक ही प्रहार किया या कई प्रहार किए। उपर्युक्त परिस्थितियों की सूची निस्संदेह संपूर्ण नहीं है और व्यक्तिगत मामलों के संदर्भ में कई अन्य विशेष परिस्थितियां हो सकती हैं जो आशय के प्रश्न पर प्रकाश डाल सकती हैं।”

15. आपराधिक न्यायशास्त्र में आशय की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि अभियोजन उस अपराध को कारित करने के आशय को सिद्ध करने में विफल रहता है तो किसी अपराध का कारित होना नहीं कहा जा सकता। आशय यह निर्णीत करने के लिए निर्णायक है कि क्या अभियुक्त ने हत्या की कोटि में आने वाला आपराधिक मानववध या हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानववध कारित किया है। आशय के साथ-साथ, ज्ञान और अपराध

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

की मात्रा, अर्थात् मृतक की हत्या किस प्रकार की गई, निर्णीत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

16. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता का अपने चाचा की हत्या करने का कोई आशय नहीं था। आशय का अभाव अपीलकर्ता द्वारा किए गए कृत्यों से सहज ही देखा जा सकता है। वह एक दिन पूर्व अपने चाचा द्वारा डांटे जाने से क्रोधित था, जिसने अभियुक्त के लिए प्रकोपन का कार्य किया। अपीलकर्ता के हाथ में चारपाई की लकड़ी का पाया था जिसे खतरनाक हथियार नहीं कहा जा सकता है। उसने मृतक पर एक ही प्रहार किया था और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता का अपने ही चाचा की हत्या करने का आशय था। हो सकता है कि वह अपने चाचा को उस फटकार के लिए दंडित करना चाहता हो, उसे पिछले दिन मिली थी। आगे यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता को यह ज्ञान था कि एक ही प्रहार से मृतक की मृत्यु हो जाएगी।

17. अतः, हमारी राय है कि मृतक को धारा 302 भादंस के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता बल्कि धारा 304 भाग II भादंस के अधीन दोषसिद्ध किया जाना होगा।

18. अपीलकर्ता को 09.08.1998 को गिरफ्तार किया गया था और विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने के पश्चात् 13.07.2001 को उसे रिहा कर दिया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के पश्चात् उसने 04.10.2014 को पुनः आत्मसमर्पण किया। उसने पहले ही आठ वर्ष से अधिक का कारावास भुगत लिया है। उसकी सजा को आजीवन कारावास से घटाकर पहले से भुगती गई अवधि तक किया जाता है। उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माना यथावत रहेगा।”

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”

70. अपीलकर्ताओं को धारा 304 के भाग I के अधीन दोषसिद्ध करने के पश्चात्, अगला विचार यह है कि उन पर कितनी सजा अधिरोपित की जा सकती है। भादंस की धारा 304 के भाग I के अधीन, जो कोई हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानववध कारित करता है, वह आजीवन कारावास, या दोनों में से किसी भांति के ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकती है, दंडित किया जाएगा, और जुर्माने के लिए भी दायी होगा, यदि वह कृत्य जिससे मृत्यु कारित हुई है, मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक चोट कारित करने के आशय से किया गया है जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना है।

71. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता को 20.11.2014 को गिरफ्तार किया गया था और तब से वह जेल में है, अतः वर्तमान अपीलकर्ता की वास्तविक कारावास की अवधि 11 वर्ष 06 माह और 15 दिन है और यदि परिहार की अवधि को सम्मिलित किया जाता है, तो यह 13 वर्ष से अधिक होगी।

72. हम मेजर सिंह (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय के निष्कर्षों और अभिमत से पूर्णतः सहमत हैं, अतः वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता के साथ-साथ अभिलेख पर लाई गई साक्ष्य और सामग्री को ध्यान में रखते हुए, हम यह उचित पाते हैं कि यदि अपीलकर्ता की सजा को आजीवन कारावास से घटाकर पहले से भुगती गई अवधि तक कर दिया जाए और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माना यथावत रखा जाए, तो न्याय के हित की पूर्ति होगी।

73. तदनुसार, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय को निम्नलिखित सीमा तक संशोधित किया जाता है:

(i) धारा 452 भादंस के अधीन अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा को बरकरार रखा जाता है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

(ii) धारा 302 भादसं के अधीन दोषसिद्धि और आजीवन कारावास की सजा को अपास्त किया जाता है।

(iii) अपीलकर्ता को धारा 304 भाग-I भादसं के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है।

(iv) अपीलकर्ता को पहले से भुगती गई अवधि की सजा दी जाती है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पहले से अधिरोपित जुर्माना यथावत रहेगा और वह मृतक के परिवार के सदस्यों को दिया जाएगा।

74. चूंकि अपील ही निर्णीत हो गई है, जमानत आवेदन निष्फल हो गया है और तदनुसार इसका निस्तारण किया जाता है। सभी लंबित आवेदन इस निर्णय के अनुसार निस्तारित किए जाते हैं।

75. विचारण न्यायालय का अभिलेख, इस निर्णय और आदेश की प्रति के साथ, अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को प्रेषित किया जाए।

76. अपीलकर्ता को तत्काल अभिरक्षा से रिहा किया जाए, यदि वह किसी अन्य आपराधिक मामले में वांछित न हो, धारा 437-क दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध के अधीन व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित करने पर, जिसमें इस आदेश के विरुद्ध कोई अपील दाखिल किए जाने और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील की सूचना जारी किए जाने की दशा में माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का वचन दिया गया हो। बंधपत्र छह माह की अवधि तक प्रवृत्त रहेगा।

(न्यायमूर्ति अबधेश कुमार चौधरी)

(न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान)

05 जून, 2026

आरबीएस/-

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



Translated Version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी विधिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"